

वाल्मीकि (हिन्दी) + तुलसी

रामायण

(संक्षिप्त)

अरण्य + किष्किंधा + सुंदर कांड

चन्द्रिका प्रसाद

श्री चन्द्रिका प्रसाद कृत पुस्तक, पुस्तिकायें

१—सत्य, जीवन-आदर्श (विद्वानों द्वारा प्रशंसित)
२—गागर में सागर (विद्वानों द्वारा प्रशंसित)
३—जीवन-पथ-प्रदर्शक (पंचायत राज द्वारा स्वीकृत)
४—पयामे-आसी [उर्दू] (मौलाना 'आज़ाद' द्वारा प्रशंसित)
५—हमारा ख़ैरख़ाह साधू [उर्दू] (विद्वानों द्वारा प्रशंसित)
६—आमाल की अहमियत [उर्दू]
७—कर्म की प्रधानता
८—रामायण के लिये चिराग़ (विद्वानों द्वारा प्रशंसित)
—राम-भक्ति का रहस्य
र्मिक भूल भुलैयाँ
साथ वि०
सन्देश
त
]
५१ डाक्टरों
म-

वादक प्रकाशन मन्दिर,
१३, लखपत राय लेन, इलाहाबाद—३

[प्रथम संस्करण]   विजयादशमी, अक्टूबर, १९६९ ई०   [बिना मूल्य स्वाध्याय]

श्री चन्द्रिका प्रसाद कृत पुस्तक, पुस्तिकायें

१—सत्य, जीवन-आदर्श (विद्वानों द्वारा प्रशंसित)
२—गागर में सागर (विद्वानों द्वारा प्रशंसित)
३—जीवन-पथ-प्रदर्शक (पंचायत राज द्वारा स्वीकृत)
४—पयामे-आसी [उर्दू] (मौलाना 'आज़ाद' द्वारा प्रशंसित)
५—हमारा खैरख़ाह साधू [उर्दू] (विद्वानों द्वारा प्रशंसित)
६—आमाल की अहमियत [उर्दू]
७—कर्म की प्रधानता
८—रामायण के लिये चिराग़ (विद्वानों द्वारा प्रशंसित)
—राम-भक्ति का रहस्य
र्मिक भूल भुलैयाँ
साथ वि०
सन्देश
ेत

] ५१ डाक्टरों

रामायण

(संक्षिप्त)

अरण्य+किष्किंधा+सुन्दर कांड

[लेखक के ७६वें वर्ष के अनुभवपूर्ण विचार सहित]

लेखक

चन्द्रिका प्रसाद

[भूतपूर्व—(१) 'रोल-ऑव-आनर' पर नाम, टीचर्स ट्रेनिंग कालेज, (लखनऊ, १९१७), सहायक अध्यापक, राजकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, उ० प्र०, (Retd, June, '46); प्रधान अध्यापक [illegible] ० वै० हाई [illegible] ूल (१९४६-५१)

[illegible] एच० [illegible] न १९१३); डा० होमियोपैथ, [illegible] एन [illegible] २७ (लखनऊ १९५४); अध्यक्ष, [illegible] सरी (defunct 1957)]

श्याम [illegible] र भवन (पूरबी),

१२, अवध बिहारी लाल रोड, प्रतापगढ़—अवध



प्रकाशक

विजय कुमार, अध्यक्ष,

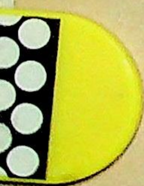
वैदिक प्रकाशन मन्दिर,

१३, लखपत राय लेन, इलाहाबाद—३

प्रथम संस्करण]

विजयादशमी, अक्टूबर, १९६९ ई०

[मूल्य — बिना मूल्य स्वाध्यायार्थ





दशरथ–सुअन मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी की
पावन राम–कथा
वाल्मीकि (हिन्दी) + तुलसी रामायण, संक्षिप्त,
अरण्य, किष्किंधा, सुन्दर काण्ड के
विनीत लेखक
प्रतापगढ़–अवधवासी अध्यापक

चन्द्रिका प्रसाद

जन्म : १-७-१८९१ ई०]   [फोटो : मार्च १९६९ ई०

"ओ३म् ओ३म् मय जन जन पेखत !
करत प्रणाम मुदित मन भेंटत !!"




सद्धर्म-अनुयायी तथा विद्यानुरागी

माननीय श्री राजा रणञ्जय सिंह जी

(एक्स-एम० पी०, एम० एल० ए०, अमेठी राज्य,

ज़िला सुलतानपुर, उ० प्र०)

के

कर-कमलों में

[प्रतापगढ़-अवधवासी चन्द्रिका प्रसाद रचित

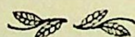
वाल्मीकि (हिन्दी)+तुलसी, संक्षिप्त]

रामायण

(अरण्य, किष्किंधा, सुन्दर कांड)

सादर समर्पित !

सत्य की महिमा का अनुभव कर रस्ता सच का दिखाते हैं।
मिथ्या औ पाखण्ड नसा कर पूजा सच की सिखाते हैं॥
(चन्द्रिका प्रसाद)



हक़ीक़त-आश्ना हो कर रहे-हक़ हम दिखाते हैं।
रियाकारी मिटाकर हक़-परस्ती हम सिखाते हैं॥
(चन्द्रिका प्रसाद 'आसी')

सुप्रसिद्ध विद्वान तथा अनुभवी ग्रन्थकार पूजनीय श्री पण्डित गंगाप्रसाद उपाध्याय, एम० ए०, प्रयाग लिखते हैं :—

अपने पुराने मित्र, साहित्य-प्रेमी तथा धर्मनिष्ठ श्री चन्द्रिका प्रसाद जी की पुस्तक "सत्य, जीवन-आदर्श" की पाण्डुलिपि को उन्हीं के मुख से आद्योपान्त सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। पुस्तक उपयोगी, रोचक तथा शिक्षाप्रद है। इसके पढ़ने से छोटे बड़े नर नारी सभी को लाभ होगा।

वाल्मीकि (हिन्दी) + तुलसी रामायण (संक्षिप्त) पर सम्मतियाँ :—

सद्धर्म-अनुयायी तथा विद्या-अनुरागी माननीय श्री राजा रणञ्जय सिंह जी, एक्स-एम० पी०, एम० एल० ए०, अमेठी राज्य, ज़िला सुलतानपुर, उ० प्र०, लिखते हैं :—

आदर्श सुधारक तथा धर्मज्ञ श्री चन्द्रिका प्रसाद जी की लेखनी में अद्भुत ओज एवम् प्रभाव है, पाठकगण स्वयम् इसका समर्थन करेंगे। मुझे विश्वास है कि लेखक महोदय की नवीन रचना वाल्मीकि (हिन्दी)+ तुलसी रामायण, संक्षिप्त, बड़े उत्साह से पढ़ी जायगी और बहुत लाभप्रद सिद्ध होगी।

परमविद्वान आदरणीय प्रोफ़ेसर श्री सुरेशचन्द्र वेदालंकार, एम० ए०, गोरखपुर, लिखते हैं :—

मैं श्री चन्द्रिका प्रसाद जी को भली भाँति जानता हूँ। आपने समाज-सुधार, चरित्र-निर्माण, राष्ट्र कल्याण की अनेक पुस्तकें लिखी हैं। बड़ी प्रसन्नता की बात है कि आपने अपनी उपदेशप्रद रोचक हृदयग्राही शैली में अपनी नवीन रचना वाल्मीकि (हिन्दी) + तुलसी रामायण (संक्षिप्त) भी उपस्थित की है जिससे मुझे पूर्ण आशा है कि जनता बहुत लाभान्वित होगी, विशेष करके इससे नवयुवक और छात्र को जीवन-निर्माण में सहायता मिलेगी।

सुप्रसिद्ध महोपदेशक महात्मा आर्यभिक्षु (रा० प्र० गु०) जी, पू० भ०, मोग़लसराय (काशी) लिखते हैं :—

विद्वान लेखक आचार्यप्रवर श्री चन्द्रिका प्रसाद जी से मैं परिचित हूँ। आप सुलझे हुये विचारक, गम्भीर चिन्तक एवम् कर्त्तव्यनिष्ठ पुरुष हैं। रामायण सम्बन्धी आपकी यह संक्षिप्त रचना तुलनात्मक दृष्टि से लिखे जाने वाले राम-साहित्य में एक नूतन प्रयास है जिससे पाठकगण निःसन्देह विशेष लाभान्वित होंगे, ऐसा मेरा विश्वास है।

पूज्यपाद श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज के भ्रातृपुत्र धर्मनिष्ठ श्री पं० मेहता जंगबहादुर दत्त जी (९५ वर्षीय) रिटायर्ड चीफ़ इञ्जीनियर P. W. D पंजाब, आइज़टनगर (बरेली) लिखते हैं :—

मैंने श्री चन्द्रिका प्रसाद जी की नवीन रचना वाल्मीकि (हिन्दी) + तुलसी रामायण (संक्षिप्त) किष्किन्धा काण्ड की हस्तलिपि को आद्योपान्त सुना। यह छोटी सी पुस्तक लोक-प्रिय रामायण के विषय पर पारदर्शी प्रकाश डालती है; पुस्तक बहुत लाभ-प्रद सिद्ध होगी, अतः मैं सर्वसाधारण के कल्याणार्थ इस पुस्तक का प्रचार परमावश्यक समझता हूँ।

ॐ

असतो मा सदगमय

असत्य से मुझे सत्य की ओर ले चलो

लेखक का नम्र निवेदन

आदि कवि महर्षि वाल्मीकि रचित रामायण और गोसाईं तुलसीदास रचित रामायण (रामचरितमानस) का मैंने अनेक बार पाठ किया है । वाल्मीकि रामायण मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम तथा उनके कृतज्ञ मित्र वानरराज सुग्रीव द्वारा समस्त दलबल सहित राक्षसराज रावण के निपट निपातन, प्राचीन आर्य जाति के नर-नारियों के आदर्श चरित्रों के सुन्दर मनोहर चित्रण एवं सदाचरण-शिक्षण का एक अमूल्य अद्वितीय अत्युत्तम ग्रन्थ है।

वाल्मीकि रामायण श्रीराम के समकालीन अतीत के उस स्वर्णिम युग की रचना है जब समाज में चातुर्वर्ण्य संस्था और आश्रम धर्म सुव्यवस्थित था, भारत स्वतन्त्र सत्पथगामी एवं स्वाभिमानी था, उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुँचा हुआ था। भारत की संस्कृति जगत में सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वमान्य थी। भारत जगत-गुरु, जगत का शिर-मौर था, भारत का साम्राज्य जगत-विस्तृत था।

भारतीयों का 'धर्म-ग्रन्थ' ईश्वर-प्रदत्त 'वेद' था; भारतीय 'वैदिक धर्मावलम्बी' थे । भारतीय अपने उपास्यदेव को जगदीश्वर, जगत-रचयिता, पालक-पोषक-रक्षक-संहारक, मंगल-कारक क्लेशनाशक पतितपावन, सत्यस्वरूप, शुद्धज्ञानस्वरूप,

ज्ञानदाता, सुखस्वरूप, सुखदाता, अनन्त अविनाशी अखण्ड अजन्मा आकाशवत् सूक्ष्मतम् सर्वव्यापक, प्राणों के भी प्राण, निराकार ओङ्कार परब्रह्म परमात्मा मानते थे। वह जगदीश्वर को सर्वशक्तिमान सर्वेश्वर सर्वज्ञ सर्वद्रष्टा सर्वांतर्यामी न्यायकारी, प्रत्येक कर्म का कर्मानुसार फल बेर-सबेर देने वाला मानते थे। वह 'सन्ध्योपासना' और 'अग्निहोत्र' द्वारा एक परमेश्वर की उपासना-आराधना करते थे; 'गायत्री मन्त्र' जप द्वारा परमेश्वर से सद्बुद्धि का वर माँगते थे, बुद्धि को विद्या द्वारा विकसित करके सद्ज्ञान प्राप्त करते थे; 'प्राणायाम' योग द्वारा चंचल मन को एकाग्र करके ईश्वर के सद्गुणों का ध्यान करते और अपनी इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखकर सद्विचार सत्कथन सत्कर्म के निरन्तर अभ्यास से उन गुणों को अपनी आत्मा में धारण, स्वभाव में विकसित करते और आत्मबल स्वावलम्बन आत्मोन्नति लाभ करते थे, इहि-लोक के साथ-साथ अपना पर-लोक सँवारते थे। वह निष्काम कर्म, सद्ज्ञान, प्रभु-ध्यान Communion with God योगाभ्यास द्वारा दिव्यदृष्टि लाभ करते थे और सत्य से आलोकित अपने अन्तःकरण में दिव्य-दृष्टि द्वारा परमात्मा परब्रह्म परमज्योति का साक्षात्कार करते, परमानन्द लाभ करते थे। ऐसे समय की रचना है 'वाल्मीकि रामायण !' परन्तु संस्कृत में होने से जनता में आज इस अद्वितीय ग्रन्थ का प्रचार कम है।

महाभारत के पहले से ही भारत की ऋद्धि-सिद्धि के सूर्य को ग्रहण लग चुका था; जूआ जैसे दुर्व्यसन का धब्बा धर्मराजों के दामन पर लग चुका था। फिर महाभारत का घोर संग्राम क्या हुआ, भारत के वीरों विद्वानों गुणवानों कलाकारों, आचार-विचार और संस्कृति का सर्वनाश हो गया; भारत में आलस्य प्रमाद विलासिता ईर्ष्या-द्वेष कलह ने डेरा डाल दिया; वेदादि सत्शास्त्र, आर्ष-ग्रन्थ लुप्त हो गये, मनुष्यकृत ग्रन्थों का

प्रचार हो गया, धीरे-धीरे मिथ्या ज्ञान, अविद्या अन्धकार छा गया, एक ईश्वर की उपासना के बदले अनेक जीवात्मा, मनुष्य कपि वाराह देवी-देवता और मूर्तियों की पूजा की जाने लगी।

कलिमल ग्रसे धर्म सब गुप्त भये सदग्रन्थ।
दंभिन्ह निज मति कल्पि करि प्रगट किये बहुपंथ॥

(तुलसीदास)

ईश्वर एक ही है परन्तु उसी एक ईश्वर के हैं अनेक अनन्त तथा विभिन्न गुण-कर्म-स्वभाव, तदनुसार उसी एक ईश्वर के हैं अनेक गुणवाचक, व्याख्यानात्मक नाम भी। उन्हीं गुण-वाचक नामों को ले लेकर भारत में अनेक विभिन्न मतमतान्तर पंथ सम्प्रदाय प्रचलित हो गये। सम्प्रदायियों वाम-मार्गियों ने अपने स्वार्थपूर्ण मन्तव्यों को सनातन (प्राचीन) प्रमाणित करने के लिये *प्राचीन ऋषिकृत ग्रन्थों में अपनी मनगढ़न्त मिलावट (घटताई, बढ़ातरी) कर दी और अन्य कपोल-कल्पित गल्प-मिश्रित ग्रन्थ भी रच-रच कर उनको ऋषियों के नाम से प्रचलित कर दिया।* स्वार्थी पंथाई गुरुओं ने बाजीगरी के से कुछ चमत्कार जनता को दिखा-दिखा कर अपने आप को ईश्वर का अवतार घोषित कर अपना पंथ चलाया, अपनी उपासना करना सिखाया। ईश्वर जीव प्रकृति, धर्म-कर्म की रूप-रेखा बदल गई, उनमें *विभिन्नता होने से भारत में सर्वत्र विभिन्नता विशृङ्खलता* फैल गई।

"अज एकपात्" (३४/५३) "सपर्य्यगाच्छुक्रमकायम्" (४०/८) इत्यादि यजुर्वेद के वचनों से सिद्ध है कि परमेश्वर जन्म नहीं लेता। भला, सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् अनन्त लोकों से युक्त सम्पूर्ण विश्व की अपने सहज स्वभाव सामर्थ्य से उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय करने वाला, अनन्त गुण-कर्म-स्वभावयुक्त परमेश्वर, प्राणों के भी प्राण, अखण्ड अविनाशी अजन्मा, घट-घट वासी सर्वव्यापक सूक्ष्मतम् निराकार परमात्मा का

आवागमन, जन्म-मरण, अवतरण कैसा ? परन्तु जैसे एक देशीय अल्पज्ञ अल्पशक्तिमान् नश्वर-शरीरधारी जीवात्मा मनुष्य का आना-जाना, जन्म-मरण होता है वैसे ही सर्वव्यापक सर्वशक्तिमान् अजन्मा निराकार *परमात्मा का भी आना-जाना, जन्म-मरण, अवतरण भ्रमवश माना जाने लगा।* महापुरुषों के जीवन-चरित्रों को कल्पित अलौकिक घटनाओं चमत्कारों मनगढ़न्त कथाओं से अलंकृत करके *महापुरुषों को ईश्वर का अवतार माना जाने लगा;* उनकी मूर्तियाँ देवालयों में स्थापित कर दी गईं; उनके दर्शन-पूजन, उन पर जल फूल फल, मिष्ठान्न-पकवान, धन-धाम, वस्त्र-आभूषण अर्पण और उनके 'नाम-जपन कीर्तन' से कार्य-सिद्ध होने, दुःख दूर होने, जीते सुख-मरने पर स्वर्ग मिलने का दमदिलासा दिया गया।

गोसाईं तुलसीदास जी के वंशज लोक-प्रसिद्ध स्वामी राम तीर्थ, एम० ए० अपनी अंगरेज़ी पुस्तक God Realization Vol. III के पृष्ठ ४०४ पर लिखते हैं कि मूर्त्ति पूजा वेद विरुद्ध है; मूर्त्ति पूजा भारत के अधःपतन का मूल कारण है।

मूर्ति पर चढ़ावा चढ़ाने वाले के हाथ क्या आता है ? वह सारी सामग्री-धनराशि तो पुजारी के हाथ लगती है। लोक में भ्रष्ट न्यायाधीश को कोई घूस देकर रिझाकर फुसलाकर अपना मतलब भले ही निकाल ले, परन्तु न्यायकारी जगदीश्वर तो घूस नहीं खाता, बातों में नहीं आता, वह तो प्रत्येक कर्म का फल देर सवेर देता है। Mills of God grind slow but sure अच्छे कर्म का अच्छा फल और बुरे कर्म का बुरा फल मिलना अनिवार्य है; सेवा शुश्रूषा करने के शुभ कर्म से किसी की प्राण-रक्षा करने का शुभ फल मिलता है परन्तु इससे किसी की हत्या कर डालने के दुष्कर्म का बुरा फल (दण्ड) मिलना नहीं टलता। कर्म की रेखा पत्थर की अमिट रेखा समान है, वह पानी की रेखा नहीं जिसके बनते बिगड़ते देर नहीं। पाप-

दण्ड दुःख भोगने का अधिकारी दुष्कर्मी कभी स्वर्ग (सुख) का अधिकारी नहीं हो सकता जैसे कोई विद्याहीन व्यक्ति किसी विद्या-पीठ में प्रवेश नहीं पा सकता।

जैसे भोजन का ग्रास मुख में रखना, मुँह चलाना और बिना निगले, पचाये, उगल देना मुँह को मजा (स्वाद) तो देता है परन्तु शरीर को, स्वास्थ्य को लाभ नहीं पहुँचता; भोजन का जितना अंश चबाकर निगला और पचाया जाता है वही शरीर को स्वास्थ्य को लाभ पहुँचाता है। इसी प्रकार रामायण या किसी ग्रन्थ का गम्भीरता के साथ पाठ करना ज्ञान बढ़ाता है और मन्त्र अथवा नाम-जपन कीर्त्तन करना चंचल मन को बहकने भटकने से बचाता है और एक अच्छा दिल बहलावा और दिखावा है; परन्तु वह आत्मा में धारण, स्वभाव में विकसित नहीं होता; आत्मा को लाभ नहीं पहुँचाता। ज्ञान में से जितना कार्यरूप में परिणत किया जाता है, मन्त्र अथवा नाम-जपन कीर्त्तन करते वक्त नामी के सद्‌गुणों को चित्त में धारण करके अपने सद्‌विचार सत्कथन सत्कर्म द्वारा उन गुणों का निरन्तर अभ्यास किया जाता है, वह शनैः शनैः आत्मा में धारण और स्वभाव में विकसित होता है जिससे आत्मा की उन्नति होती है अर्थात् गुणों का निरन्तर अभ्यास, आचरण द्वारा आत्मा में धारण किया जाना स्वभाव में विकसित होना आवश्यक है तभी आत्मा उन्नत होती लाभ पहुँचता है, इहि-लोक के साथ पर-लोक सँवरता है।

'भोजन-भोजन' जपने या रटने से किसी की भूख नहीं मिटती, भूख मिटती है 'भोजन करने से।' 'ईश्वर-ईश्वर' का जाप, नाना प्रकार के आलाप कीर्त्तन करने से कोई किसी परीक्षा में सफलता नहीं पाता; ईश्वर में निष्ठा और उत्साह से उचित कर्म (समझ कर पाठ याद करने) से सफलता पाता है। सत्य, सत्य, जप करने से कोई सत्यव्रत नहीं बन

जाता; सत्यव्रत बनता है 'कर्मण्यता' (सत्यकर्म के अभ्यास) से । नर-देह मिलती है आत्मोन्नति करने के लिये और आत्मोन्नति होती है सद्ज्ञान प्राप्त करके निरन्तर सत्कथन, सत्कर्म करने अर्थात् 'कर्म-योग' द्वारा ।

'है अपने बनाने से ही स्वास्थ्य बनता ।
औ पर-लोक करनी से अपने सँवरता ।।' (चं०)

विषयी लोलुप आलसी जन संयम परिश्रम से जी चुराने लगे; उन्होंने पुस्तक वाँचन और नाम-उच्चारण करने से ही कल्याण होना मान लिया; मन पर नियन्त्रण रखकर दुर्गुण-त्यजन, अभ्यास द्वारा शुभ गुण-धारण, आत्मोन्नति साधन की उपेक्षा (लापरवाही) की जाने लगी और नाम-उच्चारण, नाम-रटन मात्र को 'नाम-जपन' समझा जाने लगा; उसकी वैरागियों, रसिकों ने नृत्य-गायन-वादन के सहयोग से कर्णप्रिय 'कीर्त्तन' बना दिया; पंथाई गुरुओं ने महापुरुषों के नाम-जपन, कीर्त्तन के साथ अपना नाम-जपन कीर्त्तन करने का प्रचार किया ।

आत्म-विद्या से वंचित, जीवन की कठिनाइयों से चिंतित दुखित जनता निस्तरण और कल्याण का सरल साधन समझ कर डूबते-को-तिनके-का-सहारा-रूपी 'कीर्त्तन' की सरल पग-डंडी पर चल पड़ी । लोगों ने गला फाड़ कर चिल्ला-चिल्ला कर नाम-रटन कीर्त्तन करके भक्त कहलाकर समाज में आदर पाने और अपना काम बनाने का एक सरल साधन पा लिया । वर्त्तमान और पिछले जन्मों के कर्मों के फलस्वरूप विधाता जो सुख-दुःख देता रहता है उस सुख को महापुरुषों पंथाई गुरुओं की देन समझकर, अपने सिरजनहार प्रभु ओङ्कार को विसराय, महापुरुषों और पंथाई गुरुओं को ईश्वर अथवा अवतार मानकर उनकी उपासना करने की प्रथा चल पड़ी, साथ ही कर्त्तव्य पालन में उपेक्षा (लापरवाही) भी की जाने लगी ।

कार्य-हीनता, चरित्र-हीनता फैल गई; बुद्धि ज्ञान विवेक मन्द पड़ गया। दम्भ, धर्मांधता (fanaticism) पाखण्ड, अन्धविश्वास कुप्रथाओं के दलदल में फँस जाने से मिथ्याचार, पापाचार फैलने लगा। सद्भावना परोपकार सदाचार आदि आत्मा को उन्नत करने वाले देवगुण क्षीण होने और दम्भ भ्रष्टाचार छल स्वार्थपरता आदि आत्मा का पतन करने वाले दैत्यगुण विस्तीर्ण होने लगे। भारत का अधःपतन हो गया, भारत पराधीन, मुसलमानों के अधीन हो गया; उनकी भाषा फ़ारसी में 'हिन्दू' के अर्थ हैं 'काला, अनेक ईश्वर मानने वाला।' आर्यों की सन्तान 'हिन्दू' और उनका निवास-स्थान आर्यवर्त्त, भारत 'हिन्दुस्तान' कहलाने लगा। मुसलमानों ने अपना धर्म 'इस्लाम' फैलाया, '*वहदानियत*' (एक ईश्वर की उपासना) और '*शिफ़ाअत*' (अपने महापुरुष हज़रत मोहम्मद द्वारा सर्वव्यापक ईश्वर से पापियों की सिफ़ारिश) का पाठ पढ़ाया, अपना रंग जमाया।

ईश्वर-प्रदत्त वेदादि आर्ष ग्रन्थों के बदले अनेक मनुष्यकृत धर्म ग्रन्थ, एक ईश्वर परमात्मा निराकार ओङ्कार की उपासना के बदले अनेक जीवात्मा (महापुरुष, पंथाई गुरुओं आदि), की उपासना, असंख्य देवी देवता की मूर्त्ति-पूजा; अनगिनत मतमतान्तर और सम्प्रदाय; विभिन्नता विश्रृङ्खलता; धर्म के ठेकेदारों की स्वार्थांधता; अन्धविश्वास पाखण्ड कुप्रथाओं; (अन-पढ़ को चतुर्वेदी ब्राह्मण और साहित्यकार को शूद्र कहने वाली निरर्थक) ज़ात पांत, छूत-अछूत; ईर्ष्या-द्वेष-वैमनस्य आदि कारणों से *हिन्दुओं का भ्रातृत्व, एकता, जातीय-संगठन नष्ट हो चुका था।* शताब्दियों की पराधीनता और दासता से उनका चरित्र नष्ट-भ्रष्ट, *उनका स्वाभिमान भी* सर्वथा नष्ट हो गया; उनके मन में दास-वृत्ति तथा हीनक-भावना (Inferiority Complex) ने घर कर लिया; उनको अपने में कमी, कमज़ोरी और अपनी चीज़ों

में बुराई दिखाई देने लगी; उनको विदेशियों की भाषा-वेष-भूषा, रहन-सहन ने मोह लिया; उनको भेड़िया-धसान (बिना सोचे समझे, देखा-देखी किसी का अनुसरण करने) और लकीर पीटने की बान पड़ गई; उनको एक कामचोर सेवक की नाईं अपकर्म करना छोड़े बिना अपनी स्वाभाविक दास-वृत्ति से जगदीश्वर की चापलूसी करके अपकर्मों के लिये प्रातः सायं क्षमा माँगने और इस चरित्र-हीन प्रभु-भक्ति के प्रदर्शन के बल पर प्रभु को प्रसन्न करने और सद्गति-उपलब्धि की मिथ्या आस बाँधने की बान पड़ गई; उनकी बुद्धि मिथ्याचार, भ्रष्टाचार का जीवन बिताते रहने से आत्मा-परमात्मा के सम्बन्ध में भ्रम में पड़ गई।

ऐसे समय में मृत-प्राय हिन्दू-जाति के हाथ आई 'तुलसी रामायण, रामचरितमानस' जिसमें श्री रामचन्द्र जी को 'ईश्वर का अवतार' मानकर उनकी कपि-भालु सेना द्वारा क्रूर नर-भक्षी राक्षसों का मर्दन, आदर्श पुरुषों के चरित्र का सुन्दर चित्रण और नाम जपन का समर्थन है। हिन्दी में होने से तुलसी रामायण का जनता में ख़ूब प्रचार है।

वाल्मीकि रामायण और तुलसी रामायण (रामचरित-मानस) में अन्तर है। *अन्तर का कारण* गोसाईं तुलसीदास जी स्वरचित *हिन्दी रामायण*, रामचरितमानस के आरम्भ में *संस्कृत श्लोक संख्या ७ में* स्वयम् लिखते हैं :—

"नाना पुराण निगमागम सम्मतं यद्-
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोपि।
स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा-
भाषानिबन्धमति मञ्जुलमातनोति॥"

[अनेक पुराण (पुरानी कथाओं वेद और शास्त्रादि से सम्मत तथा (वाल्मीकि) रामायण में वर्णित, कुछ अन्य (साम्प्रदायिक) ग्रन्थों से, कुछ अपने अनुभव से भी उपलब्ध

की हुई राम-कथा को (गोसाईं) तुलसी (दास जी) *'स्वान्तः सुखाय'* अपने अन्तःकरण के सुख के लिये अत्यन्त मनोहर भाषा में विस्तृत करते हैं।]

गोसाईं तुलसीदास जी कलि-युग के विकट मोग़ल-शासन काल में पैदा हुए थे। उनके समय में विविध रामायण प्रचलित थीं और *वैरागियों में निराकार ओङ्कार के सर्वव्यापकता (अर्थात् सब में रमन करने वाले) गुणवाचक नाम 'राम' का प्रचार ज़ोरों में था;* इसी नाम को गोसाईं तुलसीदास जी ने समय के वातावरण और वैरागियों की संगति के कारण दशरथ-पुत्र 'मर्यादा पुरुषोत्तम राम' के चरित्र से सम्बद्ध कर दिया; वह स्वयम् कोशलेश दशरथ-पुत्र 'राम' को ईश्वर का अवतार मानते थे और गृहस्थी से विरक्त होकर वह *'राम के उपासक और अनन्य भक्त'* हो गये, उनके मन में अपने उपास्यदेव 'राम' की उपासना को लोक-प्रिय बनाने की उत्कण्ठा थी, अतः उन्होंने स्वरचित रामायण (रामचरितमानस) में साम्प्रदायिक ग्रन्थों के आधार पर दशरथ पुत्र-राम को ईश्वर का अवतार दर्शाते और हेर-फेर समस्त राम-कथा को तदनुकूल रूप देते हुए (*जैसे देखिये 'विराध-कथा-वर्णन' अरण्य कांड में, वाल्मीकि-तुलसी दोनों रामायणों में*) वाल्मीकि रामायण में वर्णित *वेद शास्त्र सम्मत राम-कथा को अपनी भावना और मन्तव्यों के साँचे में ढाल दिया* और 'नाम *सकल कलि कलुष निकंदन,'*

मेटत कठिन कुअंक भाल के,'

'नहिं कलि कर्म न भक्ति विवेकू। राम-नाम अवलम्बन एकू ॥'

अपनी इस धारणा के आधार पर 'कर्म और भक्ति विवेक' की ओर से हतोत्साहित करके ('राम-नाम-जपन' मात्र को 'पाप-नाशक' तथा 'कामना-पूरक' बताकर) *राम-नाम जपन का समर्थन किया* [जिससे गोसाईं जी को मुसलमानों के पैग़म्बर (ईश्वर-दूत) हज़रत मोहम्मद की 'शिफ़ाअत'—अल्लाह से

पापियों की सिफ़ारिश-द्वारा इस्लाम धर्म के उस समय बढ़ते प्रचार और प्रभाव को रोकना अभीष्ट था] साथ ही गौरी-पूजन, शिव-विवाह, शिव-लिंग स्थापना और शिव-स्तुति का राम-कथा में समावेश करके वैष्णवों के प्रतिवादी शैवों का समाधान किया; इस प्रकार गोसाईं जी ने मनोवांछित सुख उपलब्ध किया। इस पुस्तक के बायें पृष्ठ पर हिन्दी में वाल्मीकि रामायण (संक्षिप्त) के साथ दायें पृष्ठ पर तुलसी रामायण (संक्षिप्त) बाँचने से दोनों रामायणों में जो अन्तर है वह स्पष्ट हो जाता है।

जब आर्य जाति अपने पूर्वजों के श्रेष्ठ गुणों से हीन, पराधीन होकर हिन्दू जाति कहलाने लगी; जब मोग़ल शासन काल में इस्लाम धर्म के महापुरुष (ईश्वर-दूत) पैग़म्बर हज़रत मोहम्मद की अल्लाह (ईश्वर) से शिफ़ाअत (सिफ़ारिश) होने से पाप क्षमा, दुःख दूर, कार्य सिद्ध होने और सुख और स्वर्ग मिलने का उपदेश सुनकर हिन्दू अल्लाह और रसूल (मोहम्मद साहब) का नाम ले लेकर इस्लाम धर्म को अपना रहे थे उस विकट समय में तुलसी रामायण में अपने महा-पुरुष (राम) को ईश्वर का अवतार मानकर नाम लेने, नाम-जपन करने से पाप क्षमा, दुःख दूर, कार्य सिद्ध होने, सुख और स्वर्ग मिलने का उपदेश मिलने पर हिन्दू अपने धर्म को महानतर समझने लगे अपने धर्म में विश्वास और श्रद्धा करने लगे और राम-नाम-लेवा जाति मुसलमान हो जाने से बच गई। आपत्काल में आपद्धर्म रूपी यह युक्ति (नाम लेने, नाम-जपन करने मात्र से आत्मा परमधाम को जाती है) हिन्दू जाति की रक्षा करने में सफल हुई यद्यपि उसी तुलसी रामायण में स्थल-स्थल पर यथार्थ बात, सिद्धान्त स्पष्ट किया हुआ है। कि सदज्ञान और सदाचरण द्वारा आत्मा के शुद्ध, पवित्र, उन्नत हो जाने पर ही वह मुक्ति स्वर्ग परमधाम या ईश्वर का सम्पर्क पाती है।

समय बीतता गया और पाप-नाशक और कामना-पूरक मानकर नाम-जपन की आड़ में चरित्रहीन भक्ति प्रदर्शन, नाम-रटन, कीर्त्तन का प्रचार हो जाने से दम्भ (fanaticism) पाखण्ड ने प्रचन्ड रूप धारण कर लिया, सदाचार पर पाला गिर गया, पापाचार बढ़ गया और *निम्नलिखित विनाशकारी विचार* मन में बस गये जो जन साधारण के सत्पथ ग्रहण करने, सदाचरण और *आत्मोन्नति करने में अब बाधक हो रहे हैं :—*

'मोक्ष न कलुषित आत्मा पावै' । यह मत विषयी चित्त न लावै ॥
'संयम ते आत्मोन्नति होई' । सो करि सकै न विषयी कोई ॥
'सबु चाहैं बिनु स्रम निस्तारा । जानु चहैं भवसागर पारा ॥
अद्भुत विधि निस्तरण कहंता । कलि-महिमा गावहिं कलि-संता ॥
'नाम-रटन कलि-कलुष विनासै' । नेकु न पाप की चिन्ता भासै ॥
नाम-रटन महिमा चित लाई । करम करहु शुभ अशुभ भुलाई ॥
भोगौ सबु सुख जो मन भावै । दुर्लभ नर तन पुनि को पावै ॥
भाल-कुअंक रटन घिस डारै । साधक सीधइ सरग सिधारे ॥
अवगुन तजहु न सुकरम करहू । नाम-रटत भव वारिधि तरहू ॥
रिषि राक्षस दोऊ तर जाहीं । पुनी अघी बहु अन्तर नाहीं ॥
गीध रीछ कपिहू तर जाहीं । मनुष तरण कछु संसय नाहीं ॥
तोता मैना ट्रान्ज़िस्टरहू । नाम-रटत भवसागर तरहू ॥
को जाने तरिहैं ना तरिहैं । यहि आसा दिन पूरे करिहैं ॥
नाम-रटन सम योग न दूजा । मख न सुकर्म विवेक न पूजा ॥

सत्युगादि मँह भे विविध कठिन धर्म के कृत्य ।
कलिक धर्म इक अति सुगम नाम-रटन सों नित्य ॥

(चन्द्रिका प्रसाद)

इसीलिये ऋषियों, तत्वज्ञों ने भ्रमोत्पादक, परस्पर-विरोधी-मत-प्रतिपादक, सत्यासत्य-मिश्रित ग्रन्थों का पाठ करना सर्व साधारण के लिये विष-मिश्रित अन्न सदृश त्याज्य और वर्जित

ठहराया है क्योंकि उनके पाठ से सत्य के साथ-साथ असत्य भी मन में बैठ जाता है जो भयानक अनर्थकारी सिद्ध होता है, मनुष्य तथा जातियों का सर्वनाश कर देता है।

सच बात तो यह है कि परमात्मा सृष्टिरचयिता-प्रभु जन्म नहीं लेता; वह श्रेष्ठ जीवात्मा को प्रेरणा और जन्म देता है महा-पुरुष का।

प्रभु जहँ देखहिँ धरम गलानी। बाढ़त अधम अघी अभिमानी।
श्रेष्ठ जिवहिँ देखराइ अवस्था। प्रेरत शोधन हेतु व्यवस्था॥
सोई श्रेष्ठ जीव अवतरहीं। धर्म थापि महि सुखमय करहीं॥
(चन्द्रिका प्र०)

जगत में पथ-भ्रष्ट, पद्-दलित, सङ्कट-ग्रसित जातियों में दीनदयालु जगदीश्वर श्रेष्ठ जीवात्मा को जन्म देता है महापुरुष का जिनका 'अनुसरण करने, जिनके दर्शाये हुये सत्पथ पर चलने से पतितों का उद्धार, जातियों का उत्थान होता है। इसी तरह दयामूर्ति ईसामसीह, हजरत मोहम्मद, भगवान गौतमबुद्ध, श्री शंकराचार्य जी, महर्षि दयानन्द, महात्मा गाँधी आदि महापुरुषों को समय-समय पर आवश्यकतानुसार जगदीश्वर ने देश-देशान्तरों में जन्म दिया जो समय पाकर कहीं 'ईश्वर-दूत,' कहीं 'ईश्वर-पुत्र' कहलाये, परन्तु भारत में वह 'ईश्वर के अवतार' कहलाते हैं।

एक जाति ने अपने महापुरुष को ईश्वर-दूत मानकर भ्रातृत्व (Fraternity) का वातावरण बनाकर, दूसरी जाति ने अपने महापुरुष को ईश्वर-पुत्र मानकर मानव-सेवा (Humanity) का वातावरण बनाकर 'अपने-अपने महापुरुषों का अनुसरण करके' उनका पूजन किया तो वह जातियाँ पतित अवस्था से उन्नत अवस्था को प्राप्त हो गईं :—

करइ जो करम पाउ फल सोई। निगम नीति असि कह सब कोई॥
(तुलसी)

पहली जाति पड़ोस से आआकर वर्षों तक लूट-मार करती, फिर भारत में आबाद होकर लगभग आठ सौ वर्ष भारत पर शासन करती, उसकी संस्कृति को धूमिल करती रही, और दूसरी वणिक् जाति ने समुद्र पार से आकर अव्यवस्थित भारत पर अपनी कूट-नीति से अधिकार जमाकर दो सौ वर्ष उस पर शासन और उसका शोषण कर, उसकी निरक्षरता मूर्खता, दुःख-दरिद्रता निवारण करने की आड़ में भारत पर अपना रंग चढ़ाकर, अपनी 'भाषा-वेष-भूषा-रहन-सहन, धर्म-कर्म' का सफल प्रचार कर भारतीयों के मध्य देश-विभाजन रूपी विष-गाँठ डालकर अपना रास्ता लिया।

बस ही क्या था मालियों की धूर्त्तता देखा किये।
घोंसला उजड़ा किया हम क्रूरता देखा किये ॥ (चं० प्र०)

परन्तु हिन्दू-जाति के कर्णधार, धर्म के ठेकेदार लाल-बुझक्कड़ों ने स्वार्थवश भारत में कलि-युग के प्रकोप की घोषणा करके कपोल-कल्पित, गल्प-मिश्रित कथाओं के आधार पर 'ईश्वर, धर्म-कर्म, रीति-रवाज' की ग्रन्थावलियाँ भूल-भुलैयाँ रच डालीं जिनसे प्रसारित हुये मिथ्या-ज्ञान अन्धकार में शताब्दियों से उनके वर्ग का पोषण और भारत के शेष नव्वे प्रतिशत अशिक्षित जनता का शोषण Exploitation हो रहा है : स्वार्थियों ने विभिन्न पन्थ और सम्प्रदाय चलाकर विभिन्नता और विशृङ्खलता का वातावरण बनाकर महापुरुषों को ईश्वर का अवतार बताकर उनके अथवा उनकी मूर्तियों के दर्शन, उन पर जल फूल फल, मिष्ठान्न-पकवान, धन-धाम, वस्त्र-आभूषण अर्पण, स्वाँग भरकर रार-लीला, रास-लीला क्रीड़न द्वारा उन महापुरुषों का पूजन करना सिखाया परन्तु 'नहिँ कलि कर्म न भक्ति विवेकू।' का मन्त्र देकर उनको कर्म करने से हतोत्साहित किया जिससे हिन्दुओं ने अपने महापुरुषों के अनुकूल आचरण करने अर्थात् उन महा पुरुषों के सद्गुणों को चित्त में धरकर अपने सद्विचार

सत्कथन सत्कर्म के निरन्तर अभ्यास से उन सद्गुणों को अपनी आत्मा में धारण और स्वभाव में विकसित करने अर्थात् उन महापुरुषों का अनुसरण करने की अवहेलना (लापरवाही) की तो हिन्दू-जाति उन्नत अवस्था से गिरकर पतित अवस्था को प्राप्त हुई।

जगत-विस्तृत साम्राज्य का भार वहन करने वालों की सन्तान अपने कर्णधार, धर्म के ठेकेदार की स्वार्थपरता का शिकार होकर आज अपनी मूर्खता, दुःख-दरिद्रता के भार से कराह रही है !

घर के दीपक से आग घर में लगी।
सोई क़िस्मत तो फिर जगी न जगी॥ (चं० प्र०)

अपने महापुरुषों का अनुकरण न कर अपितु मिथ्याचार, मिथ्या-धर्मकृत्यों, अन्धविश्वास और ज़बानी जमाख़र्ची के दलदल में फँसकर संसार के अनेक धर्म खोखले और अनेक जातियाँ दिवालिया (निस्तेज) बनते-बनते अपना असली रूप खोते खोते संसार पृष्ठ से लुप्त हो गईं। महान् आर्य जाति भी अपने स्वार्थी धार्मिक ठेकेदारों की रची धार्मिक भूल-भुलैयाँ में पड़कर पतित अवस्था को प्राप्त हुई : एक कपि के लाखों पृथ्वीयों के बराबर और लाखों मील दूर सूर्य को लीलने, उगलने की कथा जैसी अनगिनत मन-गढ़न्त कथाओं को तर्क-वितर्क त्याग दिन रात श्रद्धा के साथ सुनते-सुनाते, अपने सिरजनहार सर्व व्यापक प्रभु ओ३म् को विसराय उसकी रचनाओं (मनुष्य कपि वाराह आदि) और उनकी मूर्त्तियों को पूजते-पुजाते, बिना सोचे-समझे बस देखा-देखी मिथ्या-धर्मकृत्यों में अपना समय और धन गँवाते, विद्या-प्रकाश में मिथ्या का बोध होने पर तिरस्कार के आवेग में अपनी संस्कृति को भी ठुकराते, चोटी कटाते, जनेऊ हटाते, विदेशियों का स्वाँग बनाते 'आर्य जाति' से 'हिन्दू जाति' बन चुकी और उनका 'आर्य (वैदिक)

धर्म' भी पाखण्ड की धूनी रमाते रमाते, 'हिन्दू (रीति-रवाज) धर्म' बन चुका।

"और आगे देखना होता है क्या ?"

वर्षों की पराधीनता के बाद धर्म के आधार से देश का *विभाजन होने पर भारत को स्वतन्त्रता मिली* जिसमें भ्रातृत्व-प्रेमी कुछ अल्प-संख्यक भारतीयों ने भारत से नाता तोड़कर भारत के लगभग पाँचवें भाग पर अपना धार्मिक राष्ट्र स्थापित कर लिया; शेष भारत में *विभिन्नता-प्रेमी विशृङ्खलित* और नव्वे *प्रतिशत अशिक्षित* बहु-संख्यक भारतीयों ने अपना लोक-तन्त्र धर्म-निरपेक्ष (Secular) स्थापित किया; सेक्युलरिज़्म में लौकिक (worldly) उन्नति अपेक्षित, अभिलाषित रहती है और पार-लौकिक (spiritual) उन्नति उपेक्षित, निरपेक्षित, अनिच्छित रहती है।

जगदीश और सद्धर्म से जब ध्यान हटेगा।
माया बढ़ेगी, शान्ति-सदाचार घटेगा ॥ (चं० प्र०)

सच पूछिये तो गोसाईं तुलसीदास जी की इसी चौपाई को सिर धरने से कल्याण होता है :—

"कर्म प्रधान विस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फल चाखा ॥'

वाल्मीकि और तुलसी रामायण दोनों को साथ-साथ परन्तु शताब्दियों से पुराने और प्रतिकूल विचारों में बालपन से रञ्जित होते रहने के कारण *विशेष सावधानी शान्ति और निष्पक्षता से बाँचने पर* यथार्थता को समझा और ग्रहण किया तथा यथार्थ लाभ उठाया जा सकता है।

वाल्मीकि रामायण में अनेक उत्तम शिक्षायें हैं परन्तु उनमें *सर्वोत्तम परमहितकारी शिक्षा है श्रीराम का वचन, "सत्यमेवेश्वरो लोके।"* अर्थात् लोक में सत्य ही ईश्वर है। 'सत्य' से लोक में जीवन शान्तिमय, आनन्दमय और 'असत्य' से दुःखमय हो जाता है, अतः सत्य का जान[illegible] सत्य के रूप में

ईश्वर की उपासना करना, सत्य का व्यवहार करना, सद्विचार सत्कथन सत्कर्म कर्त्तव्यपालन करना ही 'परम धर्म' और ईश्वर की कल्याणकारी उपासना है।

"साँच बरोबर तप नहीं, झूठ बरोबर पाप।
जाके हिरदय साँच है, ताके हिरदय आप॥"

वाल्मीकि रामायण मूल के अनुसार प्राचीन काल में—

(१) चैत्र मास नवमी तिथि पुनर्वसु नक्षत्र में राम का, ८ पहर (२४ घन्टे) पश्चात पुष्य में भरत का और तीसरे दिन अश्लेषा में लक्ष्मण-शत्रुघ्न का जन्म हुआ था।

(२) एक परमात्मा निराकार ओंकार की उपासना की जाती थी, प्राणायाम गायत्री-मन्त्र और ओ३म् का जाप, संध्योपासना और यज्ञ हवन किया जाता था। जीवात्मा (मनुष्य, वाराह कपि आदि) को न ईश्वर माना जाता था, न उनकी उपासना, न उनका नाम-जपन (नाम-रटन), न मूर्ति-पूजा की जाती थी।

(३) ऋषि राक्षस दोनों वेद-पाठ संध्या अग्निहोत्र यज्ञादि करते थे, फलस्वरूप वरदान पाते थे। धर्मनिष्ठ परोपकारी सदाचारी मनुष्य 'देव-देवी' कहलाते थे परन्तु निकृष्ट स्वभाव वाले स्वार्थरत दुराचारी नर-भक्षी मनुष्य 'राक्षस' कहलाते थे।

(४) दशरथ-सखा संपाती-भ्राता महात्मा जटायु चिड़िया-चिरौटा चील गृद्ध नहीं, वृद्ध साहसी यान्त्रिक उड़ाके मनुष्य थे; वीर वाली, नीति-निपुण तारा, महात्मा सुग्रीव, वेदज्ञ नीतिज्ञ पराक्रमी भारी जबड़े वाले हनुमान आदि पशु नहीं, वानर जातीय शूर-वीर मनुष्य थे।

अति सुन्दर अलङ्कारों से सुभूषित होते हुये भी मूल वाल्मीकि रामायण में पशु पक्षी को मनुष्य या देवता और मनुष्य को पशु पक्षी या ईश्वर मानकर कथा वार्त्ता का पुल बाँधना और भ्रमात्मक कल्पना नहीं है :—

'चौबीस घन्टे में पृथ्वी अपने धुरे पर घूमकर दिन रात बनाती है' इस वैज्ञानिक सिद्धान्त के विपरीत कल्पना—

(१) मास दिवस कर दिवस भा मरम न जानइ कोय।
रथ समेत रवि थाकेऊ निसा कवन विधि होय॥

(तुलसी)

(रथारूढ़ सूर्य भगवान श्री अयोध्या धाम के ऊपर एक मास तक थम कर श्री रामजन्मोत्सव निहारते रह गये, अतः रात न हो सकी।) और—

नारियों के लिये ऐसे वचन होते हुये जैसे :—

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राऽफलाः क्रियाः॥
शोचन्ति जामयो तत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम्।
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्द्धते तद्धि सर्वदा॥" (मनु०)

(जिस घर में नारियों का सत्कार होता है वहाँ सुख होता है। जिस कुल में नारियाँ शोकातुर होकर दुख पाती हैं वह कुल विनष्ट हो जाता है; जिसमें नारियाँ प्रसन्न और सुखी रहती हैं वह कुल सर्वदा बढ़ता है।)

वर्त्तमान काल के नारी जाति को नीचा दिखाने के लिये ऐसे वचन जैसे :—

(२) *'अधम ते अधम अधम अति नारी', 'सकल कपट अघ अवगुन खानि', 'अवगुनमूल सूलप्रद प्रमदा सब दुख खानि।'*

(तुलसी)

अथवा—गर्ग संहिता के संस्कृत श्लोक—

"दुर्जनः शिल्पिनो दासा दुष्टश्च परहाः स्त्रिया।
ताड़िता मार्दव यान्ति न ते सत्कार भाजनम्॥"

(दुष्ट कलाकार, दास दुष्ट, परोपकार का हरण करने वाला, स्त्रियाँ दण्डित होने पर मृदुलता को प्राप्त होती हैं; यह सब सत्कार के पात्र नहीं हैं।) का भाव ग्रहण कर हठपूर्वक

नारी जाति को और भी गिराने वाला 'ढोल और पशु समान' ताड़न (प्रहार) के योग्य बताने वाला हिन्दी में पद्यानुवाद—

(३) *'ढोल, गँवार, सूद्र, पसु, नारी।*
सकल ताड़ना के अधिकारी ॥' (तुलसी)

जिसका प्रत्युत्तर एक देवी ने उद्धृत किया है कि—

'बानर, अश्व, पुरुष, खर, श्वाना।
सुधरहिँ सकल मरोरेहि काना' ॥'

और

ईर्ष्या-द्वेष तथा दम्भ-आलस्य-प्रमाद-उत्पादक, प्रेम-एकता-जातीय-संगठन-नाशक, सामाजिक-पतन-कारक पक्षपातपूर्ण निम्न शिक्षा :—

(४) *'सापत ताड़त परुष कहंता। विप्र पूज्य अस गावहिँ संता।*
पूजिअ विप्र सील गुन हीना। सूद्र न गुन गन ज्ञान प्रवीना। ॥'
(तुलसी)

(शाप देने वाले, मार-पीट करने वाले, गाली-गलौज बकने वाले, सील गुनहीन ब्राह्मणों की पूजा करो, परन्तु मत करो आदर सर्व-गुण-ज्ञान में प्रवीण शूद्र का।) [जन्म से सब अशिक्षित—शूद्र समान—होते हैं; वर्ण-भेद—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य—गुरु पिता, विद्या माता द्वारा जन्म 'द्विज' होने से होता है। बालक के स्वभाव पर माता का (गर्भ काल से ही); पिता और वर्द्धन (breeding) का भी प्रभाव पड़ता है। स्वभाव पर शिक्षा संगति वृत्ति अवस्था का भी प्रभाव पड़ता रहता है।]

भला ऐसी (१—४) सूझ-बूझ वाल्मीकि मूल में कैसे हो सकती है ?

रामायण में अनेक उत्तम शिक्षायें मिलती हैं :—

१—कर्म की रेखा न मिटने, कर्म फल अवश्य मिलने का प्रमाण: दशरथ के शब्द-वेधी बाण से स्रवण कुमार की मृत्यु

हो जाने पर उसके वृद्ध पिता के पुत्र-शोक से प्राणान्त होने का फल :—राम के वृद्ध पिता का भी (सदा राम से साक्षात्कार होते रहते अन्त समय राम के दृष्टि से ओझल हो जाने पर) पुत्र-शोक से प्राणान्त।

२—धर्म-उल्लंघन का दुखद परिणाम : मुनियों के कहने से राम का क्षात्र-धर्म वनवास काल में जागृत हो उठा, परन्तु सीता ने राम को याद दिलाया कि 'उनको तपस्वियों का सा जीवन बिताने के लिये ही वनवास दिया गया है' और 'बिना वैर किसी को मारना उचित नहीं।' फिर भी राम ने लंकपति की भगिनी के विवाह-प्रस्ताव करने पर व्यंग-विनोद ही में उसकी नाक-कान कटवा कर उसको कुरूपा करवा दिया, उसके भाइयों-सहायकों के दल का संहार कर दण्डक भूमि राक्षस-हीन कर डाली, रार ठान ली; धर्म-पक्षी राम की विजय हुई, धर्म-विपक्षी राक्षसों का पराजय और सर्वनाश हुआ; परन्तु राम को भी (सीता-वियोग-मिस) बिलख-बिलख कर दुःख झेलना पड़ा।

३—'मनुष्य-देह आत्मोन्नति करने के लिये है' यह समझ कर और ईश्वर की सर्वव्यापकता का अनुभव कर निष्काम भाव से कर्म करने और उसे ईश्वरार्पण करने से 'मनुष्य 'विदेह' कहलाने योग्य हो जाता और जीवन सफल कर पाता है।

४—दशरथ के वरदान तुरन्त न देने, धरोहर रखने का दुखद परिणामः प्राणदान !

५—नारी और धन दोनों में बड़ा आकर्षण है; इनको बरतने में बड़ी सावधानी करने से कल्याण होता है।

६—धर्म-प्रधान युग में भी सौतेली माता (कैकेयी) को सौत (कौशल्या) की सन्तान (राम) की भलाई (राजगद्दी) न सोहाई। [१-सौतेली माँ की पैतरेबाज़ी से विपत्ति उपस्थित

(खड़ी) हो जाती है। २–कामवश दूसरी पत्नी लाने वाले को पहली पत्नी और उसकी सन्तान की रक्षा दूसरी पत्नी और उसकी सन्तान की कुटिलता से न करने पर अकल्याण होने की आशंका रहती है।]

७—राम का केवट को गले लगाकर आदर देना; नीच जान तिरस्कार न करना।

८—राम की ओङ्कार में निष्ठा, ओम्-जाप, संध्योपासना करना—

'विगत दिवस गुरु आयसु पाई। संध्या करन चले दोउ भाई ॥'

(तुलसी)

हवन, यज्ञ, सत्य-प्रेम (वनवास से अवधि पूरी किये बिना न लौटना) पितृ-भक्ति, मातृ-प्रेम, भ्रातृ-स्नेह, पत्नी-व्रत, ऋषियों का सत्कार, राक्षसों का संहार, श्रेष्ठों का रक्षण, दुष्टों का दमन, सुग्रीव और विभीषण को अपनाने का राजनैतिक कौशल, सस्नेह प्रजा-पालन····

९—सीता का अविचल पातिव्रत धर्म, धीरता से आपत्तियों का सामना करना।

१०—लक्ष्मण का निःस्वार्थ भ्रातृ-प्रेम और ज्येष्ठ भ्राता की सेवा।

११—भरत का सच्चा महान त्याग, सत्य का मान, ज्येष्ठ भ्राता का सम्मान।

१२—सुग्रीव का पश्चात्ताप, भ्रातृ-प्रेम के शिक्षाप्रद हृदयोद्गार।

१३—माता, पिता, गुरु, बन्धु, मित्र, हितकारीजन के उपकार को भूलना, कृतघ्नता घोर पाप है, इसका फल भारी दुःख, अकल्याण होता है।

१४—हनुमान का आश्चर्यजनक पराक्रम, स्वामि-भक्ति, इत्यादि।

१५—'अभिमान, परायाधन, पराई नारि' बरतना विनाशकारी होता है।

१६—अंततः सत्य की विजय, असत्य का पराजय होता है।

परम्परा-विरोधी-मत, भ्रमात्मक कल्पना, पक्षपातपूर्ण हृदयोद्‌गार, क्षेपक (मिलावट) आदि पर बुद्धिमानी से उपेक्षा की दृष्टि डालते, अर्थों पर विचार करते हुये पावन राम-कथा (अनमोल ग्रन्थ-रत्न रामायण) का ध्यान से पाठ करने वाले प्रेमी सज्जन के मन में एक नूतन चेतना, उत्साह और आनन्द का सञ्चार होता है और राम के सद्‌गुणों को चित्त में धरकर नाम-जपन के साथ उनके अनुकूल आचरण, उनका अनुसरण करने वाले बड़भागी विवेकी सज्जन की आत्मा उन्नत होती, लोक पर-लोक सँवरता है।

[शेष काण्ड के प्रकाशन का भी प्रबन्ध किया जायगा]

राम के अनुयायियों का प्रेमी, विनीत लेखक—चं० प्र०

आदि से अंत लौं बाँचि के पुस्तक,
लेख का उत्तम उद्देश जानो,
सद् आचरण व्रत धारण करके,
सात्विक जीवन में सुख मानो।

महापुरुष जग में हैं सुख शांति लाये,
स्वयम् चल के सत्पथ हैं सब को दिखाये,
मिटाने को संकट दिखाने को सत्पथ,
थे भारत में रघुनाथ श्रीराम आये।

राम का आदर्श जो चित में धरे,
राम का करि अनुसरण पूजन करे,
राम के गुण में बसा कर आत्मा,
राममय होकर वह भवसागर तरे। (चं० प्र०)

ॐ

ऋषयश्चैव देवाश्च सत्यमेव हि मेनिरे ।
सत्यवादी हि लोकेऽस्मिन् परं गच्छति चाक्षयम् ॥

(रामचन्द्र, वा० रा०, अयो० कां०, सर्ग १०९-११)

[ऋषियों और देवताओं ने सदा सत्य का ही आदर किया है । इस लोक में सत्यवादी मनुष्य अक्षय परम धाम में जाता है ।)

ऋषी देवता सत्य का मान करते,
परम धाम में सत्यवादी विचरते ।
है 'सच' मूल सुख शांति का, यह समझ कर,
सुजन सत्य मारग में ही पाँव धरते ॥ (चं० प्र०)

वाल्मीकि रामायण

(संक्षिप्त)

अयोध्या कांड

[१]

श्री राम ने सोचा कि 'भरत की सेना के कारण यहाँ की भूमि अपवित्र हो गई है और इस आश्रम में अब भरत और माताओं तथा पुर-वासियों की स्मृति शोकमग्न किया करेगी, अतः हम लोग अन्यत्र चलें ।' (अयो० कां० सर्ग ११७·२-४) श्रीराम सीता लक्ष्मण वहाँ से चल कर ऋषि अत्रि के आश्रम पर पहुँचे, और उन्हें प्रणाम किया । ऋषि ने उन्हें पुत्र की भाँति अपनाया । (५) सीता से ऋषिपत्नी अनुसूया ने कहा, "तुम वन में श्रीराम का अनुसरण कर रही हो । (२२) पति ही स्त्री

ॐ

राम जनमि जगु कीन्ह उजागर।
रूप सील सुख सब गुण सागर ॥
(भरत, तु० रा०, अयो० कां०, २०१-३)

[रामचन्द्र जी के जन्म से सारे जगत में प्रकाश हो गया। वह रूप, शील, सुख और सब गुणों के समुद्र हैं।]

किया जग में राम जनम ने उजाला,
हुआ सत्य और धर्म का बोल बाला।
गये छिप उलूक क्रूरता नीचता के,
तो सुख शान्ति ने भी प्रसारण सँभाला ॥ चं० प्र०

तुलसी रामायण

(संक्षिप्त)

अरण्य कांड

[१]

श्रीराम के प्यारे और पापनाशक महादेव जी को मैं प्रणाम करता हूँ। रूपवान, धनुर्धारी श्रीराम को मैं भजता हूँ। श्री रामचन्द्र जी के गुण गहरे हैं, उनको जानकर पण्डित विश्राम पाते हैं; मूर्ख उचित लाभ नहीं उठाते।

गोसाईं तुलसीदास जी कहते हैं कि मैंने अयोध्या निवासी मनुष्यों की और भरत जी की अनुपम प्रीति वर्णन की; अब श्रीराम ने जो पावन चरित्र वन में किये उन्हें सुनो, वह देवता मनुष्य और मुनियों के लिये कल्याणकारी है।

एक बार श्री राम ने फूलों के गहने बनाकर सीता को

का देवता है; पातिव्रत धर्म स्त्री की शोभा है। तुम अपने पतिदेव की सेवा में लगी रहो, तुम सुयश और धर्म दोनों लाभ करोगी।" (२९) सीता ने कहा, "मेरे विवाह के समय मेरी माता ने (११८·८) और वन को चलते समय मेरी सास ने (७) भी यही उपदेश किया था जो मैं कभी भूल नहीं सकती।" अति प्रसन्न होकर अनुसूया ने सीता को अंगों को सदा शोभा-युक्त बनाये रखने वाले सुन्दर दिव्य हार, वस्त्र, आभूषण, अंगराग और उबटन दिये। (१८) दूसरे दिन स्नान, सन्ध्या-अग्निहोत्र से निवृत्त हो श्रीराम ने आगे जाने की ऋषियों से आज्ञा माँगी तो उन्होंने नर-भक्षी राक्षसों से तपस्वियों की रक्षा करने को कह कर मार्ग दिखा दिया; ऋषियों को प्रणाम करके श्रीराम उसी मार्ग पर अग्रसर हुए। (११९·२१)

[अरण्य कांड आरम्भ]

दण्डकारण्य में श्रीराम एक रमणीक स्थान पर पहुँचे जहाँ मुनियों के उद्दीप्त आश्रम थे, यज्ञशालायें थीं और सदा वेद ध्वनि सुनाई पड़ती थी। (सर्ग १·६) प्रसन्नता से मुनियों ने उन सब का स्वागत किया। (१०, ११) और कहा, "हम क्रोध मोह को वश में कर चुके; दूसरों को दण्ड नहीं देते। हे आर्य! आप धर्म-पाल हैं, हमारी रक्षा करें।" (२१) श्रीराम ने मुनियों का समुचित सत्कार किया। वहाँ से आगे बढ़े तो एक बड़ा भयानक राक्षस वैदेही को पीठ पर लाद कर कुछ दूर जाकर बोला, (२·१०) "तुम दो यति एक स्त्री के साथ यतियों को कलंकित करने वाले अधर्मात्मा पापी कौन हो? (११, १२) यह सुन्दर नारी अब मेरी भार्या बनेगी। (१३) मैं विराध हूँ; तुम पापियों का रुधिर पान करूँगा।" (१४) यह सुन सीता काँपने लगीं। (१५) विराध की धृष्टता देख श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा, "इसीलिये कैकेयी ने वनवास दिलाया था; आज उसका मनोरथ पूर्ण हुआ। (१९,२०)

पहनाये। इन्द्रपुत्र जयन्त ने कौए का वेष धारण कर के श्रीराम की बल परीक्षा हेतु सीता के चरणों में चोंच मारा और भागा। श्रीराम ने ब्रह्मास्त्र मन्त्र आमन्त्रित बाण उस पर छोड़ा। वह इन्द्रादि के पास लोकों में दौड़ता फिरा परन्तु कोई उसकी रक्षा न कर सका। अन्त में कोमलचित् संत नारद के कहने से वह श्रीराम की शरण में आया। श्रीराम ने उसे एक नेत्र वाला कर के प्राण दण्ड से बचा दिया। श्रीराम सा कोमल-हृदय कौन है ?

श्रीराम चित्रकूट से चल कर अत्रि मुनि के आश्रम में पहुँचे; उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया। ऋषि ने उनको सादर सप्रेम आसन दिया, फल खिलाये और कहा, "आप मुनियों संतों को प्रसन्न करने वाले, दैत्यों का नाश करने वाले, अद्भुत, निरीह, ईश, विभु, नित्य तथा पूर्ण हैं; हे भक्तवत्सल ! मेरी बुद्धि आपके चरण कमल को न छोड़े।" सीता जी ऋषि पत्नी अनुसूया से मिलीं; उन्होंने सीता को आशीर्वाद दिया और उपदेश किया, "पति ही स्त्री का देवता है। पति का अपमान करने से नारी नरक को जाती है। पातिव्रत धर्म स्त्री का भूषण है। पत्नी को मन-वच-कर्म से पति के अनुकूल रहना चाहिये। नारी छल रहित पति सेवा से परम गति लाभ करती है। सीता ! तुम्हारा सुमिरन करके स्त्रियाँ पातिव्रत धर्म पालन करेंगी।" सीता ने अनुसूया के चरणों में सीस नवाया। श्रीराम मुनियों से यह कह कर कि 'मुझे सेवक जान स्नेह न छोड़ना', आगे बढ़े। ऋषि सोचने लगे कि कलि काल में धर्म, योग, बल नहीं; राम-नाम द्वारा नर भवसागर पार करेंगे।

"मिला असुर विराध मग जाता। आवतहीं रघुबीर निपाता ॥
तुरतहिं रुचिर रूप तेहिं पावा। देखि दुखी निज धाम पठावा ॥"

रास्ते में विराध नामक राक्षस मिला। श्रीराम ने उसको

'वैदेही को दूसरा स्पर्श करे' यह देखकर जितना शोक और दुख मुझको अब हो रहा है उतना पिता के वियोग और राज्य से च्युत होने का नहीं हुआ" (२१) श्रीराम ने विराध को अपना इक्ष्वाकु कुल बताया (३·२) और कहा कि हम शुद्ध आचरण वाले क्षत्रिय हैं। (३) विराध ने कहा, "मैं जय नामक राक्षस और शतह्रदा का पुत्र विराध हूँ।" (५) श्रीराम और लक्ष्मण ने विराध पर बाण चलाये तो वह सीता को धरती पर बैठा कर उन दोनों को कन्धे पर लाद कर घने वन में घुस गया। (३-२५) श्रीराम, लक्ष्मण ने विराध की भुजाओं को तोड़ डाला। (४·५) वह पृथ्वी पर गिर पड़ा। लक्ष्मण ने एक गड्ढा खोदा, उसमें विराध को ढकेल कर ढँप दिया क्योंकि *मरे हुये राक्षस (दुरात्मा) का गाड़ना' ही धर्म है।* (४·२३)

[२]

आगे बढ़कर श्रीराम, सीता, लक्ष्मण शरभङ्ग ऋषि के आश्रम पर पहुँचे; उनके चरण स्पर्श करके (५·२५) उन्होंने ऋषि से अपने रहने योग्य उत्तम स्थान पूँछा। ऋषि ने कहा, "आप नरश्रेष्ठ धर्म परायण पुरुष से मिलकर आज मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। आप मन्दाकिनी के किनारे ऋषि सुतीक्ष्ण के आश्रम पर जाँय तो आप का कल्याण होगा।" (३६, ३७) वहाँ और भी अनेक ब्रह्मतेजसम्पन्न तपस्वी आकर श्रीराम से मिले; उन्होंने कहा, "मुनियों को राक्षस मार डालते हैं, आप हमारी रक्षा करें। (६·१९) *हमारे तप का चतुर्थांश आपको लाभ होगा।"* (१४) श्रीराम ने उनके सामने योगियों के शत्रु राक्षसों को नष्ट करने की प्रतिज्ञा की। (२५) तत्पश्चात् वहाँ से द्विजों के साथ श्रीराम महर्षि सुतीक्ष्ण के आश्रम पर पहुँचे। (७·१) श्रीराम ने महर्षि से कहा, "हे सत्यतेजधारी सर्वगुणसम्पन्न! मुझे रहने के लिये स्थान बताइये।" महर्षि ने कहा, "रघुकुलभूषण! तुम

झट पछाड़ दिया। तुरन्त ही उसने सुन्दर रूप पाया; श्रीराम ने उसे निज धाम (वैकुण्ठ) भेज दिया।

[२]

श्रीराम, सीता और लक्ष्मण आगे बढ़े और ऋषि शरभङ्ग के आश्रम पर पहुँचे। ऋषि ने कहा, "हे नाथ! मैं आपकी राह देख रहा था, आपने कृपा करके दर्शन दिया," यह कह कर ऋषि ने अपना जप तप व्रत योग सब श्रीराम को समर्पण कर के भक्ति वर माँग लिया और मन की वासनाओं का त्याग कर प्रभु का ध्यान धर योग-अग्नि में अपना शरीर भस्म कर दिया। सब ऋषि मुनि श्रीराम की स्तुति करने लगे। श्रीराम आगे बढ़े तो कुछ मुनियों की हड्डियों का ढेर दिखाई दिया। ऋषियों ने बताया कि राक्षसों ने जिन तपस्वियों, मुनियों को मार डाला, यह उन्हीं की हड्डियों का ढेर है। इस पर श्रीराम ने हाथ उठा कर प्रतिज्ञा की कि मैं पृथ्वी को राक्षस-हीन कर दूँगा।

मुनि अगस्त्य के एक शिष्य सुतीक्ष्ण श्रीराम के दर्शनार्थ आने लगे; मुनिवर श्रीराम के प्रेम से गद्‌गद् होकर ध्यान लगा कर मार्ग में ही बैठ गये। श्रीराम वृक्ष की ओट में छिपकर उनकी लीला देखने लगे। श्रीराम ने जाकर उन्हें जगाया; वह न जागे। तब श्रीराम ने अपना चतुर्भुजी रूप उनके हृदय में दिखाया; वह अकुला कर उठ बैठे और श्रीराम के चरणों में गिर पड़े। श्रीराम ने उन्हें उठाकर गले से लगा लिया। मुनि सुतीक्ष्ण श्रीराम को अपने आश्रम में ले गये और उनका सत्कार करके उनकी स्तुति करने लगे। श्रीराम ने वरदान दिया कि "आपको अटल भक्ति, वैराग्य, गुण तथा ज्ञान प्राप्त हो!" मुनि ने कहा, "आप मेरे हृदय में सीता, लक्ष्मण सहित निवास कीजिये!" 'एवमस्तु' अर्थात् 'ऐसा ही हो' कहकर सुतीक्ष्ण मुनि के साथ श्रीराम ऋषि अगस्त्य के आश्रम को चले। सुतीक्ष्ण मुनि ने

यहीं रहो और रमणीक दण्डकारण्य में जाकर ऋषियों के दर्शन करो।" (१७) प्रातः सन्ध्या अग्नि होत्र से निवृत्त होकर सूर्योदय से पूर्व श्रीराम ऋषि मुनियों के दर्शनार्थ चल दिये। (८·२०) सीता ने श्रीराम से कहा, "हे आर्य पुत्र! आप सद्धर्म अनुयायी महापुरुष हैं, आप अधर्म में प्रवृत्त न हों। (९·२) विना वैर राक्षसों के मारने का विचार मत कीजिये; निरपराध प्राणियों का मारना मुझे नहीं रुचता है। (९·२५) वनवास में तपस्वियों का सा जीवन बिताने से मेरे सास श्वसुर को प्रसन्नता होगी।" (२९) श्रीराम ने कहा, "हे धर्म को जानने वाली जनकनन्दिनी! राक्षस शान्त मुनियों को मार कर भक्ष लेते हैं। (१०·६) मुनियों ने मेरी शरण ली है। (१७) मैं क्षत्रिय हूँ। प्रतिज्ञा करने के पश्चात् अब शरणागत् की सहायता मैं कैसे न करूँ?" (१९,२०)

ब्रह्मतेज से प्रकाशित मुनियों के आश्रमों में रहकर श्रीराम ने दस वर्ष बिता दिये। (११·२८) श्रीराम को सुतीक्ष्ण मुनि ने महर्षि अगस्त्य के पास भेजा। महर्षि अगस्त्य का शिष्य श्रीराम को अगस्त्य मुनि के आश्रम में ले गया। (१२·१५,१६) श्रीराम ने महर्षि के चरण पकड़ लिये। (२४) महर्षि ने श्रीराम को उठाकर हृदय से लगा लिया और सप्रेम सादर उन सब को स्थान दिया। (२६) महर्षि ने श्रीराम को धनुष बाण तरकश तरवारि आदि दिये। (१२·३५-३७) और कहा कि "दो योजन पर पञ्चवटी में जाकर रहिये और राक्षसों पर विजय प्राप्त कीजिये, दण्डकारण्य को पवित्र कीजिये।" (सर्ग १३·१३,२०)

श्रीराम, सीता, लक्ष्मण महर्षि के चरणों में शीश नवाकर आगे चले तो एक महाकाय वृद्ध मिला जिसे श्रीराम ने राक्षस समझा। परन्तु उसने कहा, "मैं जटायु तुम्हारे पिता का मित्र हूँ।" (१४·३) श्रीराम उसके गले लग कर उसके सामने नत-मस्तक हुए। (३५) फिर राम, लक्ष्मण, सीता वहाँ से पञ्चवटी

जाकर अगस्त्य मुनि से कहा, "जिनका आप निरन्तर जाप करते हैं वह श्रीराम आप से मिलने आये हैं।" यह सुनते ही ऋषि अगस्त्य ने दौड़कर सजल नेत्रों से श्रीराम के दर्शन किये। श्रीराम, लक्ष्मण मुनि के चरणों में गिर पड़े। उन्हें उठाकर मुनिवर ने गले से लगा लिया। श्रीराम ने मुनि से कहा, "आप से तो छिपा नहीं कि मैं किस लिये आया हूँ। आप कृपा करके मुझे रहने के लिये स्थान और राक्षसों के मारने की युक्ति बतलाइये।" मुनि ने कहा, "आप जगदीश्वर, अन्तर्यामी हैं, भला मैं आपको क्या परामर्श दूँ। मैं तो स्वयं आपका ही भजन करता हूँ। आप पञ्चवटी में रहकर दण्डक वन को पवित्र करें।"

ऋषि अगस्त्य की आज्ञा पाकर श्रीराम पंचवटी में पहुँचे। वहाँ गीधों के राजा जटायु से श्रीराम की भेंट हुई। उससे बहु प्रकार मित्रता दृढ़ करके गोदावरी नदी के तट पर कुटी बना कर श्रीराम रहने लगे। मुनियों का भय जाता रहा, वह सुखी हो गये।

एक दिन लक्ष्मण ने श्रीराम से कहा, "प्रभो! ज्ञान वैराग्य माया का निरूपण कीजिये। ईश्वर जीव का भेद बतलाइये।" श्रीराम बोले, "मैं और मेरा; तू और तेरा; यह अहंकार, ममता माया है जिसने जीवों को वस में कर रखा है। मन जहाँ तक पहुँचता है वह माया है। माया के दो भेद हैं: विद्या और अविद्या। अविद्या के वश में पड़ कर जीव संसार रूपी कुएँ में गिरता है; विद्या जो परमात्मा के गुणों (सत्व रज तम) के अधीन रह कर जगत की रचना करती है। माया को निज का बल कुछ नहीं, वह ईश्वर की प्रेरणा से सब कुछ करती है। ज्ञान में मान अभिमान नहीं रहता, सब ब्रह्म समान दीखता है। जो माया, ईश्वर और अपने को नहीं जानता वह जीव कहा जाता है। जीवों को बंध और मोक्ष देने वाला और माया

की ओर बढ़े। वहाँ श्रीराम ने एक अच्छा स्थान ढूँढा। (१५·१०) उस स्थान पर लक्ष्मण ने एक सुन्दर पर्ण कुटी बनाई। (२०)

[३]

एक दिन वहाँ रावण की बहिन शूर्पणखा श्रीराम के पास आई। उनके सुन्दर रूप पर मोहित होकर उसने श्रीराम से कहा, "तुम्हारे साथ स्त्री और तुम्हारे भाई को मैं खालूँगी। तुम मेरे साथ विवाह करके दण्डक वन में विहार करो।" (१७·२८,२९) श्रीराम ने उससे कहा, "लक्ष्मण ने स्त्री का सुख नहीं जाना है, तुम उसके साथ विवाह कर लो।" लक्ष्मण ने उससे कहा, "मैं तो श्रीराम का सेवक हूँ। तुम श्रीराम की छोटी पत्नी बन जाओ।" (१८·१०) उसने जाकर श्रीराम से कहा, "तुम इस दुबली स्त्री को त्याग कर मुझे ग्रहण करो। में इसे अभी खा जाऊँगी", यह कह कर वह झपटी। श्रीराम ने उसको रोक लिया (१८·१७,१८) और लक्ष्मण से कहा, "इस राक्षसी से हँसी-खेल करने से क्या लाभ ? देखो, सीता मृत्वत् हो गईं ! काम से उत्तेजित राक्षसी को कुरूपा कर दो", (२०) लक्ष्मण ने क्रोध के आवेग में उसके नाक कान काट लिये (१८·२१) और वह चीखती चिल्लाती अपने भाई खर के पास जाकर कहने लगी कि "दशरथ पुत्र राम की स्त्री के कारण मेरी यह गति हुई है।" (२६) खर ने कुछ राक्षस श्रीराम को मारने के लिये भेज दिये। श्रीराम ने उन राक्षसों को मार गिराया। (२०·२१) तब बड़े क्रोध के साथ खरदूषण ने चौदह हज़ार राक्षसों की सेना सहित श्रीराम पर आक्रमण किया। (२२·८) श्रीराम ने लक्ष्मण को सीता की रक्षा करने पर नियत कर दिया (२४·१५) और धनुष वाण लेकर अकेले खड़े हो गये। (१८) ऋषि मुनि सिद्ध तपस्वी विप्र सब धर्मात्मा

का प्रेरक ईश्वर है। धर्म से वैराग्य और योग से ज्ञान होता है और ज्ञान मोक्ष का देने वाला है। ज्ञान, वैराग्य दोनों भक्ति के अधीन हैं। भक्ति संतों की कृपा से मिलती है। ज्ञानियों से प्रेम, धर्म में तत्परता और मन-वच-कर्म से भजन करने से भक्ति लाभ होती है। इसे सुन कर लक्ष्मण सुखी हुये। यों ही कुछ दिन बीते।

[३]

एक दिन रावण की बहिन शूर्पणखा वहाँ गई और दोनों रूपवान राजकुमारों को देख कर मन को रोक न सकी, उन पर मोहित हो गई। उसने सुन्दर रूप बनाया और श्रीराम के पास जाकर उनसे विवाह करने की इच्छा प्रकट की। श्रीराम ने कहा कि "मेरी तो स्त्री सीता है। मेरा भाई लक्ष्मण कुँआरा है, उससे कहो।" वह जब लक्ष्मण के पास गई तो उन्होंने कहा कि "मैं तो श्रीराम का सेवक हूँ, मुझ पराधीन के पास तुझे सुभीता नहीं हो सकता। सेवक को सुख, भिखारी को मान, व्यभिचारी को शुभगति (स्वर्ग आदि) और लोभी को यश नहीं मिलता।" लक्ष्मण का उत्तर सुन कर वह फिर श्रीराम के पास गई। परन्तु उन्होंने उसको लक्ष्मण के पास फिर जाने को कहा। बार-बार आना जाना पड़ा तो उसने अपना भयंकर रूप प्रकट किया जिससे सीता भयभीत हो गईं। तब श्रीराम ने लक्ष्मण से संकेत से कहा और लक्ष्मण ने जाकर झट उसको नाक कानों से हीन कर दिया। वह कुरूपा भीषण रूप की हो गई। वह अपने भाई खर और दूषण के पास विलाप करती हुई पहुँची और बोली, "तेरे बल और पौरुष को धिक्कार है।" उन दोनों ने जब सब हाल सुना तो राक्षसों की सेना लेकर शूर्पणखा के साथ जाकर विकट रूप से श्रीराम, लक्ष्मण और सीता को घेर लिया। श्रीराम लक्ष्मण से यह कह कर कि "तुम जानकी को लेकर

श्रीराम को अकेले चौदह हज़ार राक्षसों से लोहा लेते देखकर श्रीराम के लिये मङ्गलकामना करने लगे। (२३,२७) श्रीराम के बाणों ने राक्षस सेना का विध्वंस कर डाला। खरदूषण त्रिशिरा आगे बढ़े तो श्रीराम ने ब्रह्म अस्त्र द्वारा उनका अन्त कर डाला। ऋषि मुनि आकर श्रीराम की प्रशंसा करने लगे। वह बोले, "आप की कृपा से अब ऋषि मुनि दण्डक वन में निर्विघ्नता से तपस्या करेंगे।" लक्ष्मण और सीता भी श्रीराम के पास जा पहुँचे। (३०.३६-३८)

दण्डक वन में राक्षसों के विध्वंस किये जाने का समाचार अकम्पन राक्षस ने जाकर लंकापति रावण को सुनाया। (३१.१,२) उसने कहा, "दशरथपुत्र राम और लक्ष्मण बड़े धर्मात्मा वीर पराक्रमी और तेजस्वी हैं। आप उन्हें परास्त नहीं कर सकते। केवल एक उपाय है कि आप उनकी स्त्री सीता का अपहरण करलें तो उसके वियोग में राम तेजहीन होकर जीवित न रह सकेंगे।" (३१.३१) यह समाचार पाकर रावण आकाश मार्ग से मारीच राक्षस के पास गया और बोला, "राम ने दण्डकवन में राक्षसों का संहार कर डाला। इसका बदला लेने के लिये मैं उनकी स्त्री का अपहरण करना चाहता हूँ। तुम चलकर मेरी सहायता करो।" (३१.४१) मारीच ने कहा, "हे राक्षसराज! तुम उन महा-तेजस्वी वीर बलवानों से रार ठान कर अपने कुल का नाश न चाहो।" मारीच के ऐसा कहने पर रावण लंका को लौट गया। (३१.५०)

[४]

श्रीराम के हाथों दण्डक वन के राक्षसों के नाश किये जाने का समाचार शूर्पणखा ने जाकर रावण को बताया और उसके आलस्य प्रमाद के लिये बीच सभा में उसको अपमानित किया (३३.२३) और कहा, "राम की परम सुन्दरी स्त्री सीता को मैंने

पर्वत की गुफा में चले जाओ और सावधान रहो", स्वयं हँसते हुये अपने धनुष बाण लेकर राक्षसों का मर्दन करने चले। खर दूषण ने कहला भेजा कि जिस स्त्री को छिपा रखा है उसे लाकर दे दें और दोनों पुरुष सकुशल यहाँ से चले जाँय। श्रीराम ने कहा कि "हम क्षत्रिय हैं, किसी से डरने वाले नहीं। यदि तुम्हारे बल न हो तो लौट जाओ। मैं युद्ध से मुँह फेरने वाले को नहीं मारता।" यह सुन राक्षसों ने युद्ध आरम्भ कर दिया। श्रीराम ने हज़ारों बाण छोड़े जिनसे विकट पिशाच मरने लगे; राक्षस भाग चले। खर दूषण त्रिशिरा ने उनको डाँटा कि भागने वालों को मैं अपने हाथ से मार डालूँगा, तब वह रण भूमि में डट कर लड़ने लगे। श्रीराम ने वह लीला रची कि राक्षस आपस में ही लड़ कर कट मरे। वे 'राम! राम!' कह कर निर्वाण पाते गये।

तब सीता को लेकर लक्ष्मण वहाँ आ गये। श्रीराम इसी प्रकार पंचवटी में रह कर मुनियों तपस्वियों को निर्भय और प्रसन्न करते रहे।

[४]

शूर्पणखा ने जाकर रावण से कहा कि "तू नीति विरुद्ध आचरण करता है, अभिमान, आलस्य, नशे बाज़ी में पड़ा हुआ है। तेरे सिर पर शत्रु सवार है, तुझे होश नहीं। देखने में रूप-राशि, बालक परन्तु काल के समान वीर धीर धनुर्धारी, राम-लक्ष्मण ने दण्डक वन में खर दूषण त्रिशिरा आदि सब राक्षसों का संहार कर डाला है। उनके साथ एक श्यामा सुन्दरी स्त्री है; मैंने उसको तेरे लिये लाना चाहा तो उन्होंने मेरे नाक कान काट लिये।" रावण सोचने लगा कि खर दूषण को ईश्वर के अतिरिक्त और कोई नहीं मार सकता। यदि राम ईश्वर हैं तो उनसे लड़ूंगा और उनके बाण से प्राण त्याग कर के संसार से

तुम्हारे लिये लाने का उद्योग किया तो उन्होंने मेरी नाक कान काट लिये। तुम जाकर सीता को हर लाओ, अपनी भार्या बनाओ।" (३४·२१,२२,२५) रावण ने रथ मँगाया और आकाश मार्ग से फिर मारीच राक्षस के पास पहुँचा और कहने लगा, "हे मारीच! तुम रूप बदल सकते हो। तुम चलकर सुन्दर मृग बनकर राम के आश्रम के निकट विचरने लगो। सीता तुम्हें पकड़ने के लिये राम से कहेगी। जब राम, लक्ष्मण तुम्हारे पीछे चल देंगे तो मैं सूने आश्रम में से सीता को हर लाऊँगा। तुम इस कार्य में मेरी सहायता करो।" (३६·१८-२०) मारीच ने कर जोड़ कर रावण से कहा, "श्रीराम और सीता दोनों सत्य तेज वीरता पवित्रता और धर्म की मूर्ति हैं। (३७·१३) जब मैं ऋषि विश्वामित्र का यज्ञ विध्वंस करने लपका था श्रीराम ने बाण मारा जिससे मैं सौ योजन दूर समुद्र में जा गिरा था। (३८·१९-२२) हे रावण! *पराई स्त्री के संसर्ग से बढ़ कर दूसरा कोई पाप नहीं। इस दुष्कर्म से मुँह मोड़ लो।* श्रीराम ने मेरे साथियों को बाण से मारा डाला। तब से मैं यहाँ तपस्वी का सा जीवन निर्वाह कर रहा हूँ। (३९·१४) मेरे सामने श्रीराम का नाम न लो।" (२०) रावण ने कहा, "यदि तू मेरे साथ चले और मृग बनकर विचरण करे तो मैं तुझे लंका का आधा राज्य दे दूँगा। (४०·२३) नहीं तो अभी तेरे प्राण ले लूँगा।" (२६) ताड़कापुत्र मारीच तुरन्त जान से हाथ धो बैठने के भय से रावण के साथ उसके आकाशगामी रथ पर बैठ गया और श्रीराम की पर्णकुटी के निकट जाकर अति सुन्दर मृग बनकर विचरने लगा। सीता ने वह स्वर्ण सा सुन्दर मृग पकड़ लाने अथवा उसका चर्म ही ला देने की श्रीराम से प्रार्थना की। लक्ष्मण ने कहा, "यह मृग नहीं, मारीच राक्षस होगा जिसने अनेक राजाओं को छला है।" (५३·५,६) श्रीराम ने सीता की प्रबल इच्छा जानकर लक्ष्मण से कहा, "यदि यह मृग राक्षस

तर जाऊँगा, निर्वाण पाऊँगा। यदि वह मनुष्य हैं तो उनको जीत कर उनकी स्त्री ले आऊँगा।

यहाँ श्रीराम ने यह लीला रची कि जब लक्ष्मण फल फूल लाने वन में गये तो श्रीराम ने सीता से कहा, "मैं कुछ नर लीला करूँगा : जब तक मैं राक्षसों का विनाश न करूँ, तुम अग्नि में निवास करो।" श्रीराम का सुमिरण करके सीता अग्नि में समा गईं; अपनी छाया रूपिणी सीता को वहाँ रख गईं। लक्ष्मण भी इस भेद को न जान सके।

उधर रावण मारीच के पास पहुँचा; सब हाल उसे बता कर रावण ने मारीच से कहा, "तुम चल कर कपट मृग बन जाओ तो मैं सीता को हर लाऊँ।" मारीच ने उत्तर दिया, "क्या तुमने श्रीराम को नर समझ रखा है? वह नर रूप लिये चराचर के स्वामी हैं, उनसे वैर न करना चाहिये। यह कुमार जब मुनि विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा कर रहे थे, मैं यज्ञ विध्वंस करने वहाँ गया था। वहाँ उन्होंने बिना फर का बाण मारा था और मैं सौ योजन पर जा गिरा था। उन्होंने शिव जी का धनुष बिना प्रयास ही तोड़ दिया है। ताड़का, सुबाहु, खर, दूषण, त्रिशिरा का सहज-ही वध कर डाला है। क्या मनुष्य इतना वीर हो सकता है? तुम्हें अपने कुल की भलाई अभीष्ट हो तो घर लौट जाओ।" इस पर रावण मारीच को कटु वचन कहने और गालियाँ देने लगा; वह बोला, "तू गुरु की तरह मुझे ज्ञान दे रहा है! मेरे समान जगत में कौन योद्धा है? तू मेरे साथ न चलेगा तो मैं अभी तेरी जान ले लूँगा।" मारीच ने मन में सोचा कि शस्त्रधारी, मर्म की बात जानने वाले, स्वामी, दुष्ट, धनवान, वैद्य, बन्दी, कवि और गुणी मनुष्य, इन नौ के साथ विरोध करने में कल्याण नहीं होता। यह सोच कर कि रावण की अपेक्षा श्रीराम के हाथों से प्राण खोना अच्छा है, मारीच रावण के साथ हो लिया और पञ्चवटी में श्रीराम की कुटी के समीप

होगा तो भी मैं इसको मारूँगा। (३८) तुम सावधानी के साथ सीता की रक्षा करो। मैं इस मृग को मारकर लाता हूँ।" (४९,५०) लक्ष्मण से यह कह कर श्रीराम ने धनुष बाण लेकर उस मृग का पीछा किया और आश्रम से बहुत दूर निकल गये। अन्त में श्रीराम ने उसका ब्रह्म अस्त्र से मार गिराया। मरते समय उसने असली रूप धारण किया और रावण के आदेशानुसार 'हा सीते! हा लक्ष्मण!' कहकर पुकारा। (४४.१९) श्रीराम ने सोचा कि लक्ष्मण के कथनानुसार यह मृग तो राक्षस निकला, परन्तु 'हा सीते! हा लक्ष्मण!' इसके यह शब्द सुनकर लक्ष्मण और सीता न जाने क्या समझें और क्या कर बैठें! यह सोचकर वह घबड़ा उठे, उनके रोमांच हो गया (२४-२६) और वह उतावली से अपने आश्रम की ओर चल पड़े।

मारीच की आवाज़ सुनकर सीता ने लक्ष्मण से कहा, "तुम्हारे भाई वन में आर्तनाद कर रहे हैं, तुम जाकर उनकी सहायता करो।" (४५.१-३) लक्ष्मण ने उत्तर दिया, "श्रीराम को कोई परास्त नहीं कर सकता। यह मारीच राक्षस की आवाज़ होगी। आप की रक्षा का काम श्रीराम ने मुझे सौंपा है। मैं आपको अकेला नहीं छोड़ सकता।" (४५.१७,१८) इस पर सीता क्रोध से बोलीं, "जान पड़ता है भरत ने तुमको श्रीराम के नाश करा देने के निमित्त भेजा है। निर्दयी लक्ष्मण! क्या इस प्रकार तुम मुझे प्राप्त करने की इच्छा रखते हो? मैं तुम्हारे सामने ही प्राण त्याग दूँगी।" (२४-२७) तब जितेन्द्रिय लक्ष्मण ने हाथ जोड़कर कहा, "आप मेरे लिये आराधनीया देवी के समान हैं, अतः मैं आप को उतर नहीं दे सकता। मैंने तो न्याययुक्त बात कही थी कि आपकी रक्षा करना मेरा कर्त्तव्य है। परन्तु मैं आपकी ऐसी बात सहन नहीं कर सकता। अतः अब मैं जाता हूँ। ईश्वर आप की रक्षा करेंगे!" (४५.३४)

पहुँच कर अति सुन्दर स्वर्ण मृग का रूप धारण करके विचरने लगा। सीता ने मनोहर रूपधारी मृग का वध करके उसका मृगछाला ले आने के लिये श्रीराम से कहा। श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा, "वन में राक्षस बहुत हैं; तुम अवसर को समझ कर सीता की रक्षा करो", यह कह कर धनुष वाण लिये हुए श्रीराम उस मृग के पीछे दौड़े। जिसे वेद न जान सकें, जिसका शिव जी ध्यान करते हैं वह श्रीराम सुर काज सँवारने के लिये कपट मृग के पीछे दौड़े! वह मृग कभी प्रकट, कभी गुप्त होता, छल करता श्रीराम को दूर ले गया। अन्त में श्रीराम ने ताक कर उसके वाण मारा और वह गिर पड़ा। उसने 'लक्ष्मण' का नाम पुकारा, फिर मन में 'राम' को सुमिरन किया और प्राण त्यागते समय अपना मारीच का रूप दिखाया। श्रीराम ने उसके अन्तःकरण में अपने प्रेम को पहचान कर मुनियों की दुर्लभ गति (मोक्ष) उसे दे दी। असुर को निज पद देना देख देवताओं ने हर्षित हो श्रीराम पर पुष्प वर्षा की। श्रीराम कुटी की ओर लौटे।

सीता ने जब दुख भरी (मारीच) की पुकार (हा लक्ष्मण !) सुनी तो लक्ष्मण से कहा, "तुम्हारे ज्येष्ठ भ्राता पर कोई भारी संकट है; तुम शीघ्र जाओ।" लक्ष्मण बोले, "माता ! जिसकी भृकुटी घुमाने से संसार बनता बिगड़ता है, उसे कौन मार सकता है ?" फिर जब सीता ने मर्म वचन कहे तब वन और दिशा के देवताओं को सौंप कर लक्ष्मण ने सीता के पास से राम की ओर पग बढ़ाया। उधर रावण संन्यासी का वेष धारण कर सीता के पास पहुँचा। उसने सीता को अनेक सुहावनी कथा सुनाई; राजनीति का भय और प्रेम भी दर्शाया। सीता ने कहा, "हे यति ! तुमने दुष्ट के समान वचन कहे हैं।" तब रावण ने अपना नाम बताया जिसे सुनते ही सीता भयभीत हो गई। फिर साहस करके सीता ने कहा, "अरे दुष्ट, खड़ा

यह कह कर सीता को शीश नवाकर लक्ष्मण श्रीराम की ओर चल दिये। (४०) सीता चिन्ता और दुख से रुदन करने लगीं।

जब आश्रम में राम, लक्ष्मण कोई न रहा, तब रावण परिव्राजक भिक्षु के रूप में वहाँ पहुँचा। (४६·४) वह सीता को देखते ही मोहित हो गया, वेद मन्त्र उच्चारण और सीता की प्रशंसा करने लगा। फिर उनका परिचय पूँछा। (३१) सीता ने पहले उसको आसन, जल और भोजन दिया, (३६) तब अपना परिचय दिया। (४७·२१-२४) रावण ने कहा, "मैं राक्षस-राज लंकापति रावण हूँ। हे सीते! यदि तुम मेरी भार्या बन जाओ तो तुम सब आभूषणों से विभूषित रहोगी; पाँच सहस्र दासियाँ तुम्हारी सेवा किया करेंगी।" (३२) यह सुनकर सीता तड़प कर बोलीं, "मैं महा प्रतापी शूर वीर तेजस्वी नर श्रेष्ठ दशरथ पुत्र श्रीराम की पत्नी हूँ। क्या तू शेर के मुँह में से दाँत निकालने की या अस्तुरे को जीभ से चाँटने की चेष्टा कर रहा है। अरे दुष्ट! तेरा नाश काल समीप आ गया है जो यह बक रहा है।" (३९-४२) तब रावण क्रोध से बोला, "ए सुन्दरी! तुम इस राम को जिसे पिता ने निर्वासित कर दिया है और इस वन को त्याग कर (४८·१५,१६) मेरे साथ चलो और राजभवन में आनन्द विहार करो", यह कहते हुये उसने सीता को पकड़ कर पुष्पक विमान पर बैठा लिया और चल दिया। (४९·१७,१९) सीता अपने को छुड़ाने का उद्योग करती, विलाप करती जाती थीं। यह देख जटायु ने रावण से कहा, "हे रावण! मैं धर्म में स्थित और सत्य प्रतिज्ञ हूँ। तू मेरे सामने धर्म मूर्ति राम की पतिव्रता पत्नी के अपहरण करने के निन्दित कर्म को नहीं कर सकता", और उसने रावण के अस्त्र शस्त्र सार्थी आदि को नष्ट कर दिया। रावण गिर पड़ा, फिर उठकर उसने जटायु को घायल करके गिरा दिया। सीता विलाप कर रही थीं। (५२·४) रावण ने सीता को घसीटा और

रह ! स्वामी आ गये। दुष्ट राक्षसराज, जैसे खरगोश सिंह की स्त्री को चाहता है वैसे ही तेरा हाल है; तू अब काल के वश में है।" तब क्रोध में आकर रावण ने सीता को रथ पर बैठा लिया और आकाश मार्ग से ले चला। सीता राम को पुकार कर विलाप करती जाती थीं जिसे सुन कर वृद्ध जटायु ने रावण को पहले तो डराया कि "रावण, तू जानकी को छोड़ दे और कुशल से घर जा, नहीं तो तेरा वंश राम के हाथों विध्वंस हो जायगा", फिर जटायु ने रावण को घायल कर के सीता को छुड़ा लिया। परन्तु रावण ने जटायु को मार कर गिरा दिया और सीता को लेकर उड़ चला। सीता ने एक पर्वत पर बन्दरों को बैठा देख कर अपना कुछ वस्त्र गिरा दिया।

रावण ने सीता को लंका में ले जाकर अशोक वन में रखा। सीता को डरा धमका प्रेम दर्शा कर अपने अनुकूल कर लेने में जब रावण असफल रहा तब एक नये अशोक वृक्ष के नीचे उनके रहने की सुविधा करके निवास कराया। वहाँ सीता राम के ध्यान में दिन काटने लगीं।

[५]

मारीच को मार कर लौटते समय राम ने जब लक्ष्मण को आते देखा तो कहा, "तुम मेरे वचन को टाल कर जानकी को अकेला छोड़ कर आ गये। वन में राक्षस घूमते फिरते हैं। मुझे जान पड़ता है कि आश्रम में सीता नहीं हैं।" लक्ष्मण ने पाँव पकड़ कर कहा, "हे नाथ ! इसमें मेरा कोई दोष नहीं है।" जब दोनों भाई कुटी पर पहुँचे तो उसे खाली पाया। राम प्राकृत कामी पुरुष की नाईं सीता के वियोग में व्याकुल होकर विलाप करते हुए इधर-उधर सीता की खोज करने लगे। श्रीराम अजन्मा अविनाशी हैं परन्तु मनुष्य चरित्र कर रहे हैं।

मार्ग में राम को गीधराज जटायु मिला जो राम का

उन्हें लेकर आकाश मार्ग से चल दिया। (१३)

एक पर्वत पर पाँच वानरों को बैठा देखकर सीता ने इस अभिप्राय से कि स्यात् वह राम, लक्ष्मण को समाचार दे सकें, अपना दुपट्टा और कुछ आभूषण गिरा दिये। (५४·२-४) सीता को ले जाकर रावण ने अपने अन्तः पुर में रखा (१३) और उनको राज्य और सुख का प्रलोभन दिया, (१५,१६) फिर उन्हें त्रसित किया। परन्तु सीता ने कहा, "मैं महाप्रतापी राम की *विवाहिता पत्नी अपने धर्म और व्रत की पक्की हूँ। मेरे प्राण भले ही जाँय; पर-पुरुष को स्पर्श करना कैसा, कभी ध्यान में भी नहीं ला सकती !"* रावण का सब उद्योग निष्फल हुआ तो उसने सीता को अशोक वाटिका में स्थान दिया। (५६·३०)

[५]

जब राम मारीच को मार कर लौटे तो लक्ष्मण को आता हुआ देख कर बोले, "हा लक्ष्मण! तुम ने सीता को अकेला छोड़ दिया। मुझे भय है कि उनको या तो कोई राक्षस हर ले गया होगा या उनको मार डाला होगा। (५७·२३) यदि वह जीवित न होंगी तो मैं प्राण त्याग दूँगा।" (५८·९) राम और लक्ष्मण दुख और चिन्ता में अपनी कुटी पर पहुँचे तो वहाँ सीता को न पाया। श्रीराम सीता से वियोग की व्यथा से व्यथित हो गये। (२०) राम और लक्ष्मण ने वन में इधर उधर सीता को ढूँढ़ा, फिर ऋषि मुनियों से पूँछा। हताश हो जाने पर राम ने लक्ष्मण से कहा, "सीता बिना मैं जीवित नहीं रहूँगा। अब पर-लोक में पिता जी मुझ से कहेंगे कि बिना चौदह वर्ष वन में काटे तुम यहाँ मेरे पास क्यों चले आये? तुमको धिक्कार है।! (६१·७,८) हे लक्ष्मण! *मैंने पूर्व जन्म में पाप किये हैं जिनके परिणाम स्वरूप अब मैं दुख भोग रहा हूँ!* (६३·४) राज्य से च्युत, पिता की मृत्यु, माता आदि से वियोग

सुमिरण कर रहा था। राम ने उसका मस्तक छू दिया जिससे उसकी व्यथा जाती रही। जटायु ने बताया कि रावण सीता को आकाश मार्ग से दक्षिण की ओर ले गया; सीता विलाप करती जाती थीं। यह कह कर उसने मुक्तिदाता श्रीराम के सामने शरीर त्याग करना चाहा तो राम ने कहा, "परोपकारी जन के लिये कुछ दुर्लभ नहीं। आप परम धाम प्राप्त करो। वहाँ जाकर सीता हरण की बात पिता जी से मत कहना। रावण अपने कुल के साथ जाकर स्वयम् बतायेगा।" जटायु श्रीराम की स्तुति करता हुआ परम धाम को चला गया। राम ने उसकी मृतक क्रिया अपने हाथों से की।

[६]

राम, लक्ष्मण वनों में सीता की खोज करने में लगे थे। सामने कबंध नामक राक्षस आता दिखाई दिया जिसे राम ने मार दिया। उसने बताया, "मैं गन्धर्व था; ऋषि दुर्वासा के शाप से मैं राक्षस हो गया था; वह शाप आज आपके दर्शन पाने से मिट गया।" श्रीराम ने कहा, "हे गन्धर्व! मुझे ब्रह्मकुल द्रोही नहीं सुहाता।

सापत ताड़त परुष कहंता। विप्र पूज्य अस गावहिं संता॥
पूजिअ विप्र सील गुन हीना। सूद्र न गुन गन ज्ञान प्रवीना॥

संत जन प्रसन्न चित्त कहते हैं कि ब्राह्मण शाप दे अथवा मारे पीटे अथवा कटुवचन कहे गाली गलौज बके तो भी वह पूज्य है। ब्राह्मण चाहे शील और गुणों से हीन ही क्यों न हो, उसकी पूजा, उसका आदर सत्कार किया जाना चाहिये और शूद्र, वह चाहे सर्व गुण तथा ज्ञान सम्पन्न ही हो उसकी पूजा उसका आदर नहीं होना चाहिये।" श्रीराम के चरणों में शीश नवा कर गन्धर्व आकाश में चला गया।

का दुख था ही, अब सुख की एक आधार सीता को भी राक्षसों ने या तो हर लिया या खा लिया" (५,६) राम इस प्रकार विलाप करते हुये इधर उधर पूँछते, सीता को ढूँढ़ते फिरते थे।

मार्ग में कुछ पद्चिन्ह धनुष तरकश कवच छत्र आदि और रक्तविन्दु देखकर श्रीराम बोले, "जान पड़ता है कि सीता के लिये राक्षस आपस में लड़े भी हैं। (६४·४२,४३) आह! *सीता का (पातिव्रत) धर्म भी उनकी रक्षा क्यों न कर सका? (५२) तभी तो धर्म और ईश्वर पर से जीवों का विश्वास कभी-कभी डिग जाता है!"* (५४) लक्ष्मण ने राम के चरण धर कर कहा, "पुरुषप्रवर! आप धैर्य धारण करें जिस से सीता की खोज में सफलता मिले। आप जैसे बुद्धिमान नरश्रेष्ठ आपत्तियों में विचलित नहीं होते!" (६७·७) श्रीराम को धैर्य प्राप्त हुआ।

कुछ दूर आगे चलने पर रक्त से लत्-पत् जटायु को देख उसे राक्षस समझ कर मारने के लिये राम उद्यत हुए (६७·९-१२) तब जटायु ने कहा, "चिरंजीव! सीता को तो राक्षस हर ले गया। मैंने देवी को उससे छीनने का उद्योग किया परन्तु इस दशा को प्राप्त हुआ।" (६७·१५-१७) श्रीराम यह देख कर बहुत दुखी हुये और लक्ष्मण से बोले, "देखो, *यह हमारे पिता के सखा* भी हमारे कारण घायल हुए।" (२७) फिर जटायु से बोले, "बताइये, राक्षस क्यों सीता को हर ले गया? मैंने उसका क्या बिगाड़ा था? (६८·५) मुझे उसका रूप बल स्थान बताइये।" (७) परन्तु जटायु केवल इतना ही बोल सका कि "वह सीता को दक्षिण की ओर ले गया है।" (१०) फिर जटायु का प्राण नश्वर शरीर से पयान कर गया। श्रीराम ने कहा, "हमारे हितार्थ इन महात्मा ने प्राण भी दिया और वीर-गति लाभ किया। आओ, इन पूज्यवर का मृतक कर्म करें!" फिर *चिता बनाकर जटायु की अन्त्येष्ठि क्रिया की* (३१) और उनकी सद्गति के लिये प्रार्थना की। (३५)

[७]

उदार श्रीराम आगे चले तो शवरी के आश्रम पर पहुँचे। उसने बड़ी विनम्रता और श्रद्धा से उनका स्वागत किया और कन्दमूल फल लाकर उनको खिलाये। अपने को 'एक अधम नीच नारी' कहते हुये शवरी श्रीराम की स्तुति करने लगी। तब राम ने कहा कि "मैं केवल भक्ति का नाता मानता हूँ। कुल, धर्म, जात पाँत, धन, बल, परिवार, चतुराई सब बिना भक्ति के उस बादल के समान निकम्मे हैं जिसमें पानी न हो। भक्ति नौ प्रकार की होती है: सत्संग, हरि-कथा, गुरु-सेवा, गुणगान, जप-विश्वास, शम-दम-वैराग्य, सेवा-वृत्ति, सन्तोष, सरलता और सम्भावना, तुझमें तो यह सभी गुण हैं। तूने योगियों की गति लाभ की है। अच्छा, सीता का कुछ हाल जानती हो तो बताओ।" शवरी बोली, "आप पम्पा सरोवर पर जाकर वानरेश सुग्रीव से मित्रता करें; वह सब हाल आपको बतायेगा।" फिर शवरी श्रीराम को सीस नवाकर उनका ध्यान करती हुई परम धाम को चली गई।

राम-लक्ष्मण वन की शोभा देखते हुये आगे बड़े। श्रीराम विरही पुरुष के समान दुख मनाने लगे। श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा, "देखो, इन दुष्टों से बचना कठिन है: एक तो काम. दूसरा क्रोध, तीसरा लोभ। काम का बल 'नारी' है, क्रोध का बल 'कटु वचन' है और लोभ का बल है 'इच्छायें और दम्भ।' प्रभु की कृपा हो तब ही कोई इनसे बच सकता है।" वार्त्तालाप करते-करते राम-लक्ष्मण पम्पा सरोवर पर पहुँच गये जो अति सुन्दर था; अनेक मृग पक्षी आदि वहाँ विहार कर रहे थे। सरोवर पर कुमुदिनी (कुईं) ऐसी छाई हुई थी कि उसके नीचे सरोवर का जल नहीं दिखाई देता था जैसे माया से ढका हुआ ब्रह्म मनुष्य को दिखाई नहीं देता। वहाँ के वृक्ष फलों के भार

[६]

राम, लक्ष्मण दक्खिन की ओर आगे बढ़े तो एक कुरूप भयानक राक्षस कबन्ध मिला जिसको उन्होंने मार गिराया; मरते समय उसने कहा, "ऋष्यमूक पर्वत-निवासी एक *आपकी तरह संकट-ग्रसित पुरुष को बताता हूँ* जिससे मैत्री करने से आप का कार्य सिद्ध होगा; *वह वानर जातीय ऋक्षराज-पुत्र सुग्रीव* है जो वानरेश महापराक्रमी सत्यप्रतिज्ञ तेजस्वी विनयशील है; वह सीता को खोजने और लाने में आप का सहायक होगा।" (७२·११,७)

[७]

राम, लक्ष्मण ऋष्यमूक पर्वत की ओर बढ़े और मतङ्ग मुनि के आश्रम पर पहुँचे; वहाँ से आगे बढ़े तो राम, लक्ष्मण पम्पासर के पश्चिम धर्मचारिणी संन्यासिनी शवरी के आश्रम में जाकर उस से मिले और उसकी तपस्या देखकर प्रसन्न हो गये। शवरी ने श्रीराम, लक्ष्मण का बड़ा आदर और प्रेम से स्वागत किया और कहा, "आप के शुभागमन से मेरा आश्रम पवित्र हो गया।" उसने श्रीराम को *'प्रत्यक्स्थली वेदी'* दिखाई जहाँ मुनि *गण गायत्री जप द्वारा विशुद्ध होते थे। शवरी भी अपने चित्त को एकाग्र करके तप बल द्वारा* गुरुजनों के धाम को *चली गई*। राम, लक्ष्मण तपोबल पर वार्तालाप करते हुये आगे बढ़े। श्रीराम ने कहा, "ऋषियों के आश्रम देख मेरा उत्साह बढ़ रहा है; वह देखो, ऋष्यमूक पर्वत दिखाई दे रहा है।"

———

से नीचे झुके हुये थे जैसे परोपकारी पुरुष सुन्दर सम्पत्ति पाकर नमते हैं। राम, लक्ष्मण ने उस सुन्दर स्वच्छ सरोवर में आनन्द से स्नान किया और एक वृक्ष की छाया में बैठ गये। वहाँ अनेक मुनि आये। नारद भी जा पहुँचे। श्रीराम ने उन्हें आदर के साथ अपने पास बैठा लिया। नारद ने वर माँगा कि "राम-नाम सब नामों में अधिक पूज्य होवे।" श्रीराम ने कह दिया कि 'ऐसा ही हो!' तब नारद ने पूँछा कि, "मुझको आपने विवाह करने से क्यों रोका था?" श्रीराम ने उत्तर में कहा, "जो मेरे अज्ञानी (बाल) भक्त हैं अथवा जो ज्ञानी (प्रौढ़) भक्त हैं, मैं उनकी रक्षा ऐसे ही करता हूँ जैसे अग्नि और सर्प को सुन्दर देखकर पकड़ लेने से माता अपने बालक को बचा लेती है। काम क्रोध लोभ मोह आदि में स्त्री सब से प्रबल है।

"अवगुन मूल सूलप्रद प्रमदा सब दुख खानि।"

स्त्री सब से प्रबल दुःखदायी, दुःख की खान और अवगुणों की मूल है। मैं भक्त रक्षक हूँ। इसी हेतु तुमको विवाह से बचा लिया था।" नारद ने फिर श्रीराम से सन्तों के लक्षण पूँछे तो श्रीराम कहने लगे कि, "जो पाप तथा इच्छा रहित, प्रभु-भक्ति में निश्चल, पवित्रता तथा सुख के दाता, वेद-ज्ञाता, सत्यप्रतिज्ञ, निरभिमानी, धीर, योगी, जप-तप-संयम-नियम साधक, समदृष्टि, सरल-शीतल-स्वभाव, दया-क्षमा मूर्त्ति, परोपकारी हैं, जो कभी भूल कर भी कुमार्ग में पाँव नहीं रखते, जो सदा मेरी लीलाओं को गाते और सुनते हैं, वे सब सन्त कहलाते हैं। हे मुनि! साधुओं के सब गुण सरस्वती और शेष जी भी नहीं कह सकते।"

रावण के शत्रु श्रीराम के पावन चरित्र को जो लोग गाते और सुनते हैं वे विना वैराग्य, जप और योगाभ्यास किये श्रीराम में दृढ़ भक्ति पा जाते हैं।

———

ॐ

सत्यमेवेश्वरो लोके सत्ये धर्मः सदा श्रितः ।
सत्यमूलानि सर्वाणि सत्यान्नास्ति परं पदम् ॥
(रामचन्द्र, वा० रा०, अयो० कां०, सर्ग १०९—१३)

[लोक में सत्य ही ईश्वर है। सदा सत्य के ही आधार पर धर्म की स्थिति रहती है। सत्य सब की जड़ है। सत्य से बढ़कर कोई परमपद नहीं है।]

सत्य को लोक में ईश्वर बखानो,
सत्य को धर्म का आधार मानो।
सत्य से बढ़कर परम पद न कोई,
सत्य को ही सर्व का मूल जानो ॥ चं० प्र०

वाल्मीकि रामायण

(संक्षिप्त)

किष्किन्धा काँड

[१]

कमल से भरे पम्पा सरोवर के समीप पहुँचकर वसन्त ऋतु की शोभा देख-देख श्रीराम को कमल-नयनी सीता की सुधि सताने लगी; वह विरह से व्याकुल हो उठे और विलाप करते हुये लक्ष्मण से बोले, "यदि मैं सीता के साथ यहाँ निवास कर सकता तो न इन्द्रलोक जाता, और, न अयोध्या ही जाता! (सर्ग १·९५) परन्तु सीता के बिना बसन्त ऋतु मेरे शोक की वृद्धि कर रही है। लक्ष्मण ! तुम जाकर अयोध्या में भ्रातृवत्सल भरत से मिलो। मैं सीता के बिना जीवित नहीं

ॐ

धरमु न दूसर सत्य समाना।
आगम निगम पुरान बखाना॥
(रामचन्द्र, तु० रा०, अयो० कां०, ९६-३)

[वेद, शास्त्र और पुराणों में कहा है कि सत्य के समान दूसरा धर्म नहीं है।]

सत्य सा कोई न धर्म और भक्ती,
सत्य में रहती निहित ईश-शक्ति।
सत्य की महिमा हैं वेदादि गाते,
सत्यव्रती जन ही पाते हैं मुक्ती॥ चं० प्र०

तुलसी रामायण

(संक्षिप्त)

किष्किंधा कांड

[१]

नील कमल के समान सुन्दर, अति बलयुक्त, विज्ञान से पूर्ण, श्रेष्ठ धनुर्धारी, गो-ब्राह्मण-प्रिय, सद्धर्मरक्षक, परमहितकारी, सीता की खोज में लगे हुये, वे दोनों रघुवर, राम-लक्ष्मण हमें भक्ति प्रदान करें! धन्य हैं वे जो निरंतर राम-नाम-अमृत पान करते हैं! हे मन्द मन! ज्ञान-खानि, पाप-नाशिनी काशी का सेवन कैसे नहीं करता? जिसने सब देवगणों को जलते देख कर उनकी रक्षार्थ घोर हलाहल विष का पान कर लिया, तू क्यों नहीं ऐसे परम दयालु शङ्कर को भजता? शङ्कर जी के समान दयालु दूसरा कौन है?

रह सकता।" (सर्ग १·११३) दीन के समान श्रीराम का विलाप सुनकर लक्ष्मण ने विनीत भाव से कहा, "हे मर्यादा पुरुषोत्तम ! आप शोक त्यागकर धैर्य धारण करें। हम उत्साह द्वारा ही सीता जी की खोज कर सकेंगे। आप आत्मबल भूल रहे हैं।" (१२२) तब राम, लक्ष्मण पम्पासर से आगे चल कर ऋष्यमूक पर्वत के समीप पहुँचे।

उन दोनों वीरों, राम और लक्ष्मण को देख वानरेश सुग्रीव को भय हुआ कि कहीं वाली ने उनको न भेजा हो। उसने हनुमान से कहा कि तुम जाकर पता लगाओ कि वह कौन हैं, क्यों आये हैं ? तापस का रूप धारण कर के हनुमान गये और नम्रता से श्रीराम से बोले, "राजवंशी पराक्रमी तेजस्वी धीर देवता-समान रूपवान पुरुष आप कौन हैं ? कहाँ से और क्यों आये हैं ? यहाँ वानरों के धर्मात्मा राजा सुग्रीव रहते हैं : वह आपसे मित्रता करना चाहते हैं ? मैं उनका मन्त्री हनुमान, भिक्षु के रूप में उपस्थित हुआ हूँ।" (सर्ग ३·२२,२३) श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा, "यह वानरों के राजा महात्मा सुग्रीव के मन्त्री हमसे मित्रता की इच्छा से आये हुये हैं। *यह वेद और व्याकरण के बहुत बड़े पण्डित और नीतिज्ञ हैं। इनका वाक्य शुद्ध और उच्चारण मधुर है !* (२८,२९) जिस राजा के ऐसा गुणवान मन्त्री हो उसके सकल मनोरथ सिद्ध होते हैं।" (३५) श्रीराम के ऐसा कहने पर लक्ष्मण ने हनुमान से कहा, "विद्वान् ! हमें महात्मा सुग्रीव के गुण ज्ञात हैं; हम उन्हीं को ढूँढ़ रहे हैं। (३७) आप मैत्री की जो वार्त्ता चला रहे हैं वह हमें स्वीकार है।" (३८) तब प्रसन्न होकर हनुमान ने पूँछा कि "आप इस भयंकर वन में किस लिये आये हैं ?" लक्ष्मण बोले, "महा प्रतापी राजा दशरथ के यह ज्येष्ठ पुत्र श्रीराम वनवास करने आये हैं। हम इनके छोटे भाई लक्ष्मण हैं। इनकी स्त्री सीता जी भी साथ आई थीं परन्तु उनको राक्षस हर ले गये। दिति-पुत्र

राम, लक्ष्मण पम्पा सरोवर से आगे चले, ऋष्यमूक पर्वत के निकट पहुँचे।

इन बलवानों को आते देख कर सुग्रीव ने हनुमान से कहा कि "तुम अवध्य और मङ्गलकारी ब्रह्मचारी का वेष धारण करके उनके पास जाओ और ठीक समझो तो संकेत से मुझे समझा कर बता देना। अगर वे वाली के भेजे हुये हों तो मैं इस पर्वत से चल दूँ।" हनुमान विप्र का रूप धारण करके गये और प्रणाम करके राम, लक्ष्मण से बोले, "हे साँवले और गोरे शरीर वाले वीरो! आप कौन हैं जो क्षत्रिय के रूप में वन में फिर रहे हैं? कोमल चरणों से आप कठोर भूमि में क्यों विचर रहे हैं? आपका शरीर सुन्दर और कोमल है, वन में आप धूप और लू क्यों सह रहे हैं? आप दोनों क्या नर, नारायण हैं, या अखिल-भुवन-पति हैं जिन्होंने मनुष्य का अवतार लिया है?" राम ने उत्तर दिया, "हम राम, लक्ष्मण, कोशलेश दशरथ के पुत्र हैं; पिता का वचन पालन करने वन में आये हुये हैं। मेरी पत्नी जानकी भी साथ आई थीं, किसी राक्षस ने उनको हर लिया। हे विप्र! हम उन्हीं को खोजते फिरते हैं। तुम अपना वृत्तान्त सुनाओ।"

प्रभु राम को पहचान कर हनुमान चरणों में गिर पड़े और आनन्द से गद्गद् होकर बोले, "स्वामी! मैं तो माया के वश में आपको न पहचान सका; आपने क्यों नर की तरह मुझसे पूँछा? मैं तो माया के वश में हूँ, अतः आपको भूल गया; परन्तु आपको तो मुझे भुलाना न चाहिये। भगवन्! आपके भजन की मुझे कोई विधि नहीं मालूम। सेवक अपने स्वामी के, और, पुत्र अपनी माता के भरोसे निश्चिन्त रहता है: सेवक या पुत्र अच्छा हो या बुरा हो, स्वामी या माता-पिता उसका पालन करते ही हैं।" यह कहकर हनुमान प्रेम से राम के चरणों में गिर पड़े। राम ने प्रेम से हनुमान को उठा कर गले से लगा

दनु ने प्राण त्यागते समय बताया कि राजा सुग्रीव समर्थ हैं, वह सीता को हरने वाले का पता लगा देगा। *अतः हम और श्रीराम अब राजा सुग्रीव की शरण में आये हुये हैं।*" (सर्ग ४·१५-२४) करुणायुक्त वचन को सुनकर कुशलवक्ता हनुमान ने कहा, "राजा सुग्रीव भी राज्य और स्त्री खोकर इस पर्वत पर निवास करते हैं। वह अवश्य आप की सहायता और सीता जी की खोज करेंगे," (२८) ऐसा कहकर हनुमान ने मधुर वाणी से श्रीराम से कहा, "अच्छा, चलिये, राजा सुग्रीव के पास चलें।" (२९)

[२]

ऋष्यमूक पर्वत से हनुमान ने मलयगिरि जाकर सुग्रीव को सब वृत्तान्त सुनाया। हनुमान के साथ सुग्रीव श्रीराम के पास गये और बोले, "भगवन्! आप धन्य हैं! *यदि आप मुझ वानर से मैत्री करना चाहते हैं तो आप मेरा हाथ ग्रहण कीजिये।*" श्रीराम ने प्रसन्नतापूर्वक सुग्रीव का हाथ ग्रहण किया और सुग्रीव को छाती से लगा लिया। (सर्ग ५·११,१२) अग्नि को साक्षी देकर दोनों ने प्रदक्षिणा की (१५) सुग्रीव ने अपना हाल बताकर कहा कि, "हे महाभाग! आप मेरे भाई वाली से मुझे अभय कर दें।" श्रीराम ने कहा कि "मैं तुम्हारे शत्रु वाली का बध करूँगा।" (२७) सुग्रीव प्रसन्न हो बोले, "हनुमान ने मुझको आपका वृत्तान्त सुनाया है। मैं सीता जी को खोज लाकर आपको दूँगा। मैंने एक दिन देखा था कोई राक्षस एक सुन्दरी को आकाश मार्ग से लिये जा रहा था। वह 'हा राम!' 'हा! लक्ष्मण!' पुकारती, रोती जाती थीं। हमें देख उसने अपना दुपट्टा और आभूषण गिरा दिये थे; कदाचित वही सीता जी होंगी", यह कह कर सुग्रीव ने वह सब लाकर श्रीराम को दिये जिसे देख श्रीराम रुदन करते हुये मूर्च्छित हो गये। (सर्ग

लिया : प्रेम से राम के भी अश्रु धारा बह चली। राम ने कहा, "मैं न किसी को शत्रु समझता हूँ, न मित्र; समदर्शी भाव रखता हूँ; तथापि सेवक मुझे अधिक प्रिय है।"

राम को अनुकूल देख कर हनुमान ने कहा, "इस पर्वत पर वानरों का राजा सुग्रीव रहता है; वह आपका दास है। आप सुग्रीव से मित्रता कीजिये और उसे दीन जान कर अभय कर दीजिये; वह बहुत से वानरों को भेज कर सीता का पता लगायेगा।" यह कह कर हनुमान राम, लक्ष्मण को पीठ पर चढ़ा कर ले चले। राम, लक्ष्मण को देख और उन्हें हितैषी जान कर सुग्रीव ने अपने को धन्य माना, उनके चरणों में सादर शीश नवाया।

[२]

राम, लक्ष्मण सुग्रीव से गले मिले। दोनों ओर का समाचार सुना कर, अग्नि को साक्षी कर के हनुमान ने दोनों की मित्रता दृढ़ कर दी। लक्ष्मण ने राम का चरित्र कह दिया, सुग्रीव ने नेत्रों में नीर भरे हुये कहा, "मिथिलेश कुमारी (सीता जी) मिल जायँगी। मैं यहाँ बैठा था, वह परबस पड़ी हुई 'राम! राम! हा राम! पुकारती रोती चिल्लाती हुई आकाश मार्ग से जा रही थीं, हमें देख कर अपना पट गिरा दिया था।" राम ने उसे माँग कर देखा और हृदय से लगा लिया और शोक मनाने लगे। सुग्रीव ने कहा, "शोक त्याग दीजिये। मैं शीघ्र ही सीता जी को खोज लाऊँगा।"

राम ने सुग्रीव से वन में रहने का कारण पूँछा। सुग्रीव ने कहा, "एक बार मय दानव के पुत्र मायावी को मारने के लिये मेरा भाई वाली उसकी गुफा में मुझे द्वार पर एक पखवारा प्रतीक्षा करने के लिये कह कर घुसा था। एक मास मैं वहाँ रहा। जब गुफा में से रुधिर की धार बह निकली, तब वाली

६·-१७,१८) लक्ष्मण ने कहा, "मैं भुजबन्द और कान के कुण्डल नहीं पहचानता परन्तु *सीता जी के चरण नित्य छूता था, इस कारण उनके पाँव के नूपुरों को पहचानता हूँ।"* (सर्ग ६·२२) सुग्रीव ने श्रीराम को समझाया कि मैंने तो राज्य और स्त्री खोने पर धैर्य नहीं छोड़ा। *धर्मात्मा और श्रेष्ठ पुरुष होकर धैर्य छोड़ना आप के लिये निन्दित है।* (सर्ग ७·६-८) आप धैर्य और पुरुषार्थ का आश्रय लें।" (१३) श्रीराम ने अपनी आँखें पोंछ कर सुग्रीव को गले लगा लिया। (१५,१६) और कहा, "*आपके समान मित्र दुर्लभ है।* (१८) आप सीता की खोज करें। (१९) और मैं अपना वचन सत्य करूँगा।" (२१) सुग्रीव ने कहा, "आज *आप रघुवन्शी वीर का मित्र बनने से मैं वानर माननीय हो गया हूँ।"* (८·१·४)

सुग्रीव ने कहा, "मय दानव के पुत्र मायावी को मारने के लिये मेरे ज्येष्ठ भाई वाली मुझको द्वार पर खड़ा करके उसकी गुफा में घुस गये थे। बहुत समय तक मैं उनकी प्रतीक्षा करता रहा। जब गुफा में से रुधिर धारा धरा पर प्रवाहित हो चली और राक्षस की गर्जना सुनाई पड़ी तो वाली का बध जानकर मैं शोक में डूब गया और अपनी रक्षार्थ गुफा के मुख पर शिला रख कर चला आया। यहाँ सब ने मेरा राज तिलक कर दिया परन्तु जब दैत्य को मारकर वाली लौटे तो मैंने राज्य उन्हें सौंप दिया। फिर भी उन्होंने वैर भाव रखा : मुझको मार-पीट कर मेरा सर्वस्व और स्त्री छीन कर मुझे निर्वासित कर दिया। अब मैं यहाँ सुयोग्य मन्त्री हनुमान आदि के साथ निर्वाह करता हूँ।" श्रीराम ने सुग्रीव को धैर्य बँधाकर कहा कि "मैं तुम्हारे शत्रु भाई का नाश करूँगा।" सुग्रीव ने वाली के हाथ से मारे हुये महाकाय दुन्दुभि राक्षस की हड्डियाँ दिखाईं जिसे श्रीराम ने पैर की ठोकर से दूर फेंक दिया। (११·८४) और ऐसा बाण चलाया जो सात साल के वृक्ष भेदकर श्रीराम के पास लौट

का मारा जाना समझ कर मैं अपने स्थान पर लौट आया। पुर बिना स्वामी का देख कर मंत्रियों ने मुझे राजा बना दिया। जब वाली मायावी को मार कर आया तो उसने मुझे बहुत मारा और स्त्री समेत मेरा सर्वस्व छीन कर मुझे निर्वासित कर दिया। मैं मारा-मारा फिरता रहा। अन्त में इस ऋष्यमूक पर्वत पर आकर रहने लगा; मतङ्ग ऋषि के शाप के भय से वाली यहाँ नहीं आता।" सुग्रीव के दुःख को सुनकर दीन दयाल राम की भुजायें फड़क उठीं। उन्होंने कहा, "वाली का मैं अवश्य नाश करूँगा। जो मित्र के दुःख से दुखी नहीं होते उनका मुँह देखने में पाप होता है। मित्र वही है जो अपने पहाड़ जैसे बड़े भारी दुःख को धूल के कण के समान कम समझे परन्तु मित्र के रज-कण, नाम मात्र दुःख को सुमेरु पर्वत के समान भारी समझे। ऐसे लोग मित्रता करने का क्यों दम भरते हैं जिन्हें मित्र को कुमार्ग में जाने से रोक कर संमार्ग में चलाने की बुद्धि न आई। 'मित्र को कुछ भी देने लेने में मन में शंका न आने दे और सामर्थ्य भर मित्र की सदा सहायता करे', मित्र वही है। मित्र के विपत्ति काल में जो अत्यधिक स्नेह करे वही श्रेष्ठ मित्र है। अतः हे सखा! चिन्ता और शोक त्याग दो; मैं हर तरह तुम्हारा काम बनाऊँगा।"

सुग्रीव ने वाली के बल और वीरता की प्रशंसा की और दुन्दुभी दैत्य की हड्डियाँ और साल के वृक्ष दिखलाये। श्रीराम ने पैर की ठोकर से उन हड्डियों को दूर फेंका और साल के वृक्ष विना प्रयास ही ढा दिये। राम का अपरिमित बल देख कर सुग्रीव को विश्वास हुआ कि राम वाली को मार सकेंगे। वह राम के चरणों में शीश नवाने लगा। ज्ञान और भक्ति उत्पन्न होने पर सुग्रीव बोला, "वाली इस हेतु मेरा मित्र ही ठहरा कि उसके कारण शोक नाशक प्रभु आप मुझे मिले।" भक्ति आनन्द में सुग्रीव राज पाट की इच्छा त्याग कर विरक्त सा हो गया

आया। (सर्ग १२·३,४) *श्रीराम के पराक्रम को देखकर सुग्रीव को विश्वास हुआ कि वह वाली का वध कर सकेंगे।* फिर सब लोग किष्किन्धा पर्वत को चले।

[३]

किष्किन्धा में सुग्रीव ने वाली को युद्ध के लिये ललकारा। श्रीराम वृक्ष की ओट में छिप गये। सुग्रीव युद्ध में वाली से हार कर ऋष्यमूक पर्वत पर मतङ्ग वन में भाग गया। वहाँ जब राम लक्ष्मण हनुमान आदि पहुँचे तो सुग्रीव ने राम से कहा कि मुझे युद्ध के लिये भेज कर आपने अपना वचन पालन नहीं किया। राम ने कहा कि "तुम दोनों एक समान हो, इस कारण मुझे भय होता था।" राम के कहने पर लक्ष्मण ने सुग्रीव को गजपुष्पीलता की माला पहना दी।' (सर्ग १२·३९,४०) श्रीराम ने कहा कि "इस माला द्वारा इस बार मैं तुमको पहचान कर तुम्हारे शत्रु को निःसन्देह मारूँगा।" फिर सब लोग किष्किन्धा पर्वत गये।

सुग्रीव के ललकारने पर वाली फिर युद्ध के लिये चला तो उसकी यशस्विनी स्त्री तारा ने कहा, "अङ्गद कहता था कि कोशलेश दशरथ पुत्र राम और लक्ष्मण सुग्रीव की सहायता कर रहे हैं। यह दोनों वीर बड़े महात्मा और सर्व गुण सम्पन्न हैं। इनसे विरोध न करो। अपने भाई से वैर त्याग कर के प्रेम करो और उस (सुग्रीव) को युवराज बनाकर श्रीराम से मित्रता कर लो।" (सर्ग १५·२४-२६) वाली ने तारा को समझाया कि "*राम धर्मात्मा हैं तो अकारण मुझे मारने का पाप वह कैसे कर सकता है?* (१६·५) *मैं सुग्रीव का दर्प ही चूर करूँगा, उसे जान से नहीं मारूँगा,"* (१६·७) यह कह कर वाली जाकर सुग्रीव से भिड़ गया। राम ने वृक्ष की ओट से वाली की छाती में बाण मारा जिससे वह धराशायी हो गया। (१६·३६) राम,

परन्तु राम ने कहा, "मेरा कहा तो मिथ्या नहीं होता। मैं वाली का बध अवश्य करूँगा।"

धनुष बाण लिये हुये राम-लक्ष्मण सुग्रीव के साथ किष्किंधा को चले।

[३]

श्रीराम के भरोसे सुग्रीव ने जाकर वाली को ललकारा तो वाली सुग्रीव पर दौड़ा। परन्तु उसकी स्त्री तारा ने वाली से कहा, "कोशलेश दशरथ सुत यह राम और लक्ष्मण तेज और बल की सीमा हैं; यह काल को भी जीत सकते हैं।" वाली ने उससे कहा, "ऐ कायर स्त्री, सुन! राम तो समदर्शी हैं। अगर उन्होंने मुझे मार डाला तो भी मैं सनाथ (कृतकृत्य) हो जाऊँगा", यह कह कर अभिमानी वाली ने दौड़ कर सुग्रीव को घूँसा मारा जिससे पीड़ित होकर वह भाग आया और राम से कहने लगा कि "मैं तो पहले ही कहता था कि यह भाई नहीं, मेरा काल है। "तुम दोनों भाई एक रूप हो, इससे मैंने वाण नहीं चलाया", यह कहते हुये राम ने सुग्रीव का शरीर छू दिया तो उसकी सारी पीड़ा जाती रही, वह वज्र समान हो गया। राम ने सुग्रीव के कंठ में एक माला डाल दी और उसे फिर लड़ने को भेजा। राम स्वयं वृक्ष की ओट में छिप कर देखने लगे। जब सुग्रीव को हारते देखा तो राम ने वाण तान कर वाली के हृदय में मारा जिससे वह गिर पड़ा।

श्रीराम को सम्मुख देख वाली उठ बैठा और उनके चरणों में दृष्टि जमा कर वाली ने राम से कहा, "आपने धर्म के लिये अवतार लिया है, व्याध की नाईं छिप कर मुझे छिप कर क्यों मारा? और किस अपराध के लिये मारा!" राम ने कहा, "छोटे भाई की स्त्री, बहिन, पुत्र की स्त्री, कन्या; यह सब बराबर (कन्या समान) हैं। इनको कुदृष्टि से देखने वाले को मारने

लक्ष्मण महाबली वाली के समीप गये। (१७·१२)

वाली का तेज घट रहा था परन्तु उसने राम से कठोर वाणी में कहा, "तुम राजवन्शी पराक्रमी धर्मात्मा हो (१७·१४) तो पराङ्मुख को मारकर तुमने कौन सा यश लाभ किया' (१५) दूसरे से लड़ते हुये को अधर्म और छल से घायल करके सज्जनों के वेश में तुमने पाप किया ? (१७·२२-२४) महात्मा दशरथ ने पापी को कैसे उत्पन्न किया ? (४३) किस लिये तुमने साँप की तरह मुझको डँसा ? (४८) मैं तुम्हारी स्त्री को एक दिन में ला सकता था।" (४९) श्रीराम ने कहा, "तुमने अपने छोटे भाई की स्त्री को ग्रहण किया। जो छोटे भाई की स्त्री, पुत्र-वधू, बहिन और कन्या को कुदृष्टि से देखता है उसका वध करना ही उचित है। (१८·२२-२३) तुम धर्म को न समझकर क्रोधवश बोल रहे हो; मैं धर्म पर स्थित हूँ।" (४३) वाली ने लज्जित होकर कहा, "आप सत्य कहते हैं। आप धर्म का तत्व जानते हैं। (४५) धर्म संगत-उपदेश देकर मेरा कल्याण करें! (४९) आप सुग्रीव और अङ्गद को समान जानें। सुग्रीव परम तपस्विनी तारा का अपमान न करें।" (५०-५६) श्रीराम ने कहा, अपने दुष्कर्मों का फल (दण्ड) इस देह से भोग चुके; अतः अब तुम ईश्वर में चित लगा दो; तुम उत्तम गति लाभ करोगे। तुम्हारा प्रिय पुत्र अङ्गद सुख से रहेगा।" (६२-६४) वाली ने अपने कठोर वचन के लिये श्रीराम से क्षमा माँगी और मौन हो गया। (६६)

तारा आकर, "हा आर्यपुत्र! आप स्वर्ग सिधार चले!" कहकर विलाप करने लगी। फिर वह श्रीराम को सुनाते हुये बोली, दूसरे से लड़ते हुये को मारने के निन्दित कर्म से क्या अब आप को कुछ सन्ताप नहीं होता है?" (सर्ग २०·१५) वाली मूर्च्छा से किंचित निवृत्त होकर सुग्रीव से बोला, "मेरे किये हुये को क्षमा करना। तुम मेरी यह दिव्य माला धारण करो और वन वासियों के राज्य को सम्भालो। महाबली अङ्गद का

में पाप नहीं होता। तूने तो अपनी स्त्री की सीख को भी नहीं सुना और सुग्रीव को मेरी भुजाओं के आश्रित जान कर भी अभिमानवश उससे लड़ने आया।" वाली ने कहा, "हे प्रभो! क्या आपकी शरण में आकर भी मैं पातकी हूँ? अब अन्तकाल में मुझे आप ही की गति (शरण) है!" कोमल वाणी सुन कर राम ने उसके मस्तक पर हाथ धर कर कहा, "कहो तो तुम्हारे शरीर को अचल कर दूँ?" वाली ने कहा, "कृपानिधान, सुनिये! जन्म जन्मान्तर के यत्न से अन्त समय 'राम' कहने पर 'राम' सामने नहीं आते जैसे इस समय आप मेरे सामने आये हुये हैं, तो शरीर के अन्त करने का इससे अच्छा अवसर कौन होगा? मुझको अत्यन्त अभिमानवश जानकर आप कहते हैं कि देह रख ले। भला ऐसा कौन मूर्ख होगा जो हटवश कल्प वृक्ष को हाथ से खोकर बबूल के पेड़ में पानी दिया करेगा? अच्छा, अब दया कर के यह वरदान दीजिये कि कर्मवश फिर जन्म लूँ तो प्रभु भक्त बनूँ; और, अंगद, मेरे पुत्र को आप अपनाइये, अपना दास बनाइये!" यह कह कर वाली ने राम के चरणों में ध्यान किया तो श्रीराम ने उसे अपने धाम (बैकुण्ठ) भेज दिया।

[४]

किष्किंधा के लोग व्याकुल होकर दौड़े! तारा को विलाप करते हुये और विह्वल देख कर राम ने उसे ज्ञानोपदेश दिया कि "पञ्चभूतात्मक शरीर तुम्हारे सन्मुख सोया हुआ है। जीव इसमें से निकल गया, वह नित्य है, कभी मरता नहीं। फिर तुम किस के लिये रोती हो?" इस प्रकार उसकी मोह माया जब राम ने हर ली तो उसने भक्ति का वरदान माँग लिया।

राम की आज्ञा होने पर सुग्रीव ने वाली का विधिवत् मृतक कर्म किया। राम ने लक्ष्मण से कहा कि तुम जाकर सुग्रीव का

मेरी तरह प्रेम से पालन करना। सुषेण की पुत्री-नीति-निपुण तारा की बात का आदर करना। श्रीराम का कार्य सिद्ध करना। (फिर अपने पुत्र से कहा) हे अङ्गद! तुम सदा सुग्रीव के अनुकूल रहना।" (२२·१३-२२) इतना उपदेश देने के पश्चात् वाली का शरीर निष्प्राण हो गया।

[४]

वानरों ने हाहाकार मचाया तारा और अङ्गद विलाप करते-करते मूर्च्छित हो गये। यह दशा देख सुग्रीव द्रवित हो गये और श्रीराम से बोले, "युद्ध में मेरे भाई वाली कहते थे कि 'तुम चले जाओ, मैं तुम्हारे प्राण लेना नहीं चाहता' परन्तु *मैंने काम, क्रोध वश अपने धर्मात्मा भाई वाली का वध कराया है, यह अपयश चिरकाल तक संसार में रहेगा।* अतः अब राज्य भोग करने से मेरा मन निवृत्त हो गया है!" (सर्ग २४·८,११) श्रीराम ने सुग्रीव तारा अङ्गदादि को ज्ञानोपदेश देकर धैर्य बँधाया और कहा कि "अब बिलम्ब न करके शिविका लाओ, उसमें वाली को श्मशान में ले चलो।" सुग्रीव ने कहा, "शिविका के आगे आगे धन लुटाते जाना है।" (२५·३१) नदी तट पर अङ्गद *ने वाली का शास्त्रीय विधि से अग्नि संस्कार किया।* (५०) लक्ष्मण सुग्रीव आदि राम के पास लौट आये। श्रीराम से हनुमान ने कहा, "आप चलकर सुग्रीव का राज्याभिषेक कर दें।" श्रीराम ने कहा, "मैं पिता की आज्ञापालन हेतु चौदह वर्ष नगर में प्रवेश नहीं कर सकता। (२६·९) लक्ष्मण! तुम जाकर शास्त्र विधि से सुग्रीव का राजतिलक करा दो और अङ्गद को युवराज बना दो। फिर वर्षा काल के उपरान्त सीता की खोज की जायगी। तब तक मैं इसी स्थान पर निवास करूँगा।" *राजा सुग्रीव ने हवन यज्ञ किया; श्रेष्ठ ब्राह्मणों को दान दिया;* प्रजा को सन्तुष्ट किया। (सर्ग २६·२९,३०)

राजतिलक करा दो। लक्ष्मण सब जन के साथ राम को शीश नवा कर चले। नगर में जाकर सब प्रजा और ब्राह्मणों को बुला कर लक्ष्मण ने राज्य सुग्रीव को दिया और अंगद को युवराज बना दिया। संसार में देवता और मनुष्य सब स्वार्थवश प्रीति करते हैं परन्तु राम बड़े दयालु हैं; उन्होंने सुग्रीव को दुखी देख कर दुःख दूर कर के राजा बना दिया। ऐसे प्रभु को जान कर भी जो भूलता है वह क्यों न विपत्ति के जाल में पड़े ?

राम ने सुग्रीव को बुलाया और नृपनीति का उपदेश देकर कहा, "मैं चौदह वर्ष नगर में नहीं जा सकता और यहीं प्रवर्षण गिरि पर कुटी बनाकर रहूँगा; तुम अङ्गद सहित राज करो। मेरे काम को ध्यान में रखना।

देवताओं ने यह जानकर कि राम आकर कुछ दिन वहाँ रहेंगे, पहले ही से सुन्दर गुफायें बना रखी थी।

प्रवर्षण पर्वत में रमणीक स्थान पर राम, लक्ष्मण रहने लगे। भँवरे पक्षी मृग आदि की देह धारण करके सिद्ध मुनि गण प्रभु राम की सेवा करने लगे। राम एक श्वेत शिला पर बैठे लक्ष्मण से भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, राजनीति, अनेक कथाओं को कहने लगे। "देखो, वर्षा काल है : आकाश पर मेघ छा गये हैं। बादल झुक-झुक कर इस तरह बरसते हैं जैसे विद्वान् पुरुष विद्या पाकर नवते हैं। पानी धरती पर गिर कर मैला हो जाता हैं जैसे जीव से माया लिपट जाती है। नदियों का पानी समुद्र में जाकर इस तरह निश्चल हो जाता है जैसे जीव परमात्मा को पाकर स्थिर हो जाता है। पृथ्वी पर हरी घास फैल जाने से मार्ग दिखाई नहीं पड़ता जैसे पाखण्ड धर्म फैल जाने से सद्धर्म मार्ग लुप्त हो जाता है।" वर्षा ऋतु का अन्त होते समय राम लक्ष्मण से कहने लगे, "नदी और तालाबों का जल धीरे-धीरे ऐसा सोख चला जैसे ज्ञानवान पुरुष धीरे-धीरे ममता त्याग देता हैं।" शरद ऋतु आने पर राम लक्ष्मण से

श्रीराम प्रस्रवण पर्वत में एक रमणीक स्थान पर निवास करते थे परन्तु सीता से वियोग के कारण उन्हें निद्रा न आती थी। (सर्ग २७-३१,३२) लक्ष्मण जी राम को समझाते, शोक त्याग कराते और प्रोत्साहित करते रहे; वर्षा काल बिताते और शरद ऋतु की प्रतीक्षा करते रहे।

हनुमान ने वर्षा ऋतु बीतने पर सुग्रीव को उपकार कर्त्ता श्रीराम के कार्य को सफल बनाने, सीता के खोज करने की सुधि कराई। (२९·१२-१५) अतः नील को आज्ञा हुई कि वानर-सेना शीघ्र एकत्रित करें। (२९·२९,३०)

राम को सीता के वियोग से असह्य दुःख होने लगा। लक्ष्मण जी ने कहा, *आप प्राणायाम योग द्वारा मन को एकाग्र करके चित वृत्तियों को वश में करें। चिन्ता दूर करें और पुरुषार्थ और कर्म योग के आश्रित हों।*" (सर्ग ३०·१६) राम ने लक्ष्मण से कहा, "राज्य और स्त्री से भ्रष्ट मुझ अनाथ पर क्या राजा सुग्रीव कृपा न करेगा ? अतिथि, दुखी, उपकारी जन को आशा देकर आशा भङ्ग करने वाला अधम है। (७१) लक्ष्मण ! तुम जाकर सुग्रीव को व्रत पालन का सन्देश दो, नहीं तो मैं उसके कुल का भी संहार करूँगा।" (सर्ग ३०·८०-८३) लक्ष्मण ने किष्किन्धा में बड़े क्रोध के साथ वानरों को श्रीराम का सन्देश सुनाया। वह सब भयभीत हो गये और लक्ष्मण जी को सुग्रीव के भवन में ले गये। रास्ते में हनुमान जाम्वान सुषेण वीरबाहु सूर्याक्ष नल कुमुद सुनेत्र आदि वानर वीरों के प्रासाद मिले। अङ्गद आकर लक्ष्मण को राज महल में सुग्रीव के पास ले गये। तारा ने कहा, "सुग्रीव न कृतघ्न हैं, न आलस्यवादी हैं। (सर्ग ३५·३) नल नील सेना एकत्रित कर रहे हैं। वानरों के आने पर सब आपकी सेवा में उपस्थित होंगे।" तब लक्ष्मण का क्रोध शान्त हुआ। सुग्रीव ने कहा, "मैं महा प्रतापी राम की सेवा करूँगा।" लक्ष्मण जी ने कहा, "तुम्हारे जैसे *मित्र*

कहने लगे, "वर्षा में जो बहुत से जीव जन्तु पृथ्वी पर इकट्ठे हो गये थे, वह सब शरद ऋतु के आने पर दूर हो गये जैसे अच्छा गुरु मिलने पर सन्देह और भ्रम समूह दूर हो जाते हैं।

राम ने लक्ष्मण से कहा, "अब यदि एक बार सीता का पता लग जाता तो मैं काल को भी जीत कर सीता को ले आता। देखो, सुग्रीव भी मेरी सुधि विसार कर राज सुख भोग करने में लीन हो गया। लक्ष्मण, तुम जाओ, सुग्रीव को डरा धमका कर ले आओ, नहीं तो मैं कल उसका भी संहार करूँगा।

इधर जब हनुमान ने सुग्रीव को राम के काज की सुधि कराई तो वह बहुत भयभीत हुआ; उसने आज्ञा दी कि वानरों को भेज कर सेना एकत्रित करो और सीता की खोज कराओ। वानर इधर उधर चल दिये। लक्ष्मण वहाँ पहुँचे और बड़े क्रोध से बोले कि मैं इस नगर को जला दूँगा। उनका क्रोध देख सारे नगर निवासी व्याकुल हो गये। अंगद ने आकर चरणों में सिर नवाया। सुग्रीव ने तारा और हनुमान को भी भेजा कि जाकर लक्ष्मण का क्रोध शांत करायें। वह सब लक्ष्मण जी को राज-महल में ले गये जहाँ उनका भली प्रकार सत्कार किया गया और क्षमा प्रार्थना की गई। हनुमान ने बताया कि चारों ओर दूत भेज दिये गये हैं। तब लक्ष्मण जी का क्रोध शांत हुआ। फिर सब लोग राम के पास आये और क्षमा प्रार्थी हुये। राम ने सुग्रीव से कहा कि तुम मुझे बहुत प्यारे हो। अब सीता की खोज करनी चाहिये।

को हम पाकर सनाथ हो गये। (३६·१३) तुम्हारी सहायता को चिरकाल के लिये दैव ने दिया है। तुम बल पराक्रम में श्रीराम के समान हो। (१८) श्रीराम की ओर से तुमको कठोर शब्द मैंने कहा है उसके लिये क्षमा करो। (२०) अब श्रीराम के पास चलो।"

[५]

फिर सब पालकी में श्रीराम के पास गये। (सर्ग ३८·१०) सुग्रीव ने बताया कि शीघ्र ही वानर सेना एकत्रित हुई जाती है। श्रीराम ने प्रसन्न होकर सुग्रीव को गले लगा लिया और उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। देखते-देखते तारा के पिता सुषेण (सर्ग ३९·१५) सुग्रीव की स्त्री रूपा के पिता (१६) हनुमान के पिता केसरी (१८) आदि सेनापति की सेनाओं के असंख्य वानर एकत्रित हो गये। सुग्रीव ने आज्ञा दी कि एक मास के भीतर सीता का समाचार लाओ (४०·७०) अन्यथा प्राणदण्ड के भागी होगे। सुग्रीव के सुयोग्य मन्त्री हनुमान को बल तेज पराक्रमी बुद्धि में सर्वश्रेष्ठ जानकर श्रीराम ने उनको अपनी अँगूठी दी और कहा, "इसके द्वारा जानकी तुमको मेरा दूत समझेगी।" (४४·१२,१३,१४)

राम, लक्ष्मण एक मास की अवधि बिताने लगे। वानर चारों ओर सीता को खोजने चल दिये। सीता को न पाकर और भूख प्यास से हताश होकर वानर विन्ध्य गिरि में घूमते थे कि हनुमान जी ने एक गुफा में से भीगे पर का पक्षी निकलते देखकर विचार किया कि गुफा में जलाशय होगा। (सर्ग ५०·११) अतः हनुमान ने सब वानरों समेत उस गुफा में प्रवेश किया; वह पहले अन्धकारमय थी, फिर सब एक अति रमणीक स्थान पर पहुँचे। (२०) वहाँ एक तपस्विनी, 'स्वयंप्रभा' थी; उसने सबको विश्राम दिया (५१·१६) तत्पश्चात्

[५]

इतने में वहाँ असंख्य वानर पहुँच गये। सुग्रीव ने कहा, "तुम एक मास के भीतर सीता जी की खोज लगा कर लौटो, नहीं तो तुम सब प्राण दण्ड के भागी होगे।" यह आज्ञा पाते ही सब वानर जहाँ तहाँ चल दिये। सुग्रीव ने अंगद जाम्वान हनुमान आदि प्रधान योद्धाओं को बुला कर आज्ञा दी कि "दक्षिण की ओर जाकर सीता की खोज करो। देह पाने का यही फल है कि हर प्रकार स्वामी की सेवा करें।" सब वानर शीश नवा कर चल दिये। राम ने हनुमान को अलग बुला कर अपनी अँगूठी देकर कहा कि "सीता को समझा कर शीघ्र ही लौट आना।" भगवान सब कुछ जानते हुये भी राजनीति के अनुसार कार्य करते हैं।

वानर चारों ओर राक्षसों को मारते हुये और मुनियों से पूँछते हुये सीता की खोज कर रहे थे कि सब प्यास से व्याकुल हो उठे। हनुमान ने एक शिखर पर चढ़ कर देखा कि चकवे बगुले हंस आदि पक्षी एक गुफा में घुसे जा रहे हैं। उस शिखर से उतर कर हनुमान सब वानरों को लेकर उस गुफा में घुस गये। वहाँ एक मनोहर वाटिका में एक ताल के समीप एक तपस्विनी बैठी थी। उसने कहा कि "मैं (दिव्य नामक गन्धर्व की कन्या 'स्वयं प्रभा') अब राम दर्शनार्थ जाऊँगी। तुम अब चिन्ता न करो। सीता मिल जायँगी।" उसके आदेशानुसार सभों ने आँखें वन्द कर लीं तो आँख खोलने पर सब समुद्र तट पर थे। राम से भक्ति का वरदान पाकर वह तपस्विनी बदरिका

उसने सब वानरों को अपने तप बल से गुफा से बाहर पहुँचा दिया। (सर्ग ५२·२९,३०)

[६]

अवधि बीतते देख अङ्गदादि वानर निराश होकर विचार करने लगे कि किष्किन्धा न लौट कर उसी गुफा में जाकर रहेंगे। (सर्ग ५३·२५) हनुमान ने कहा, "श्रीराम का कार्य न होने से लक्ष्मण सब का नाश कर देंगे। (५४·१९) धर्मात्मा सुग्रीव का बताया हुआ कार्य करके उनके पास चलना ही उचित है।" (२२) अङ्गद बोले, "जिसने अपने ज्येष्ठ भाई के जीते जी उसकी पत्नी माता तुल्य को कुत्सित भावना से देखा हो; उस भाई का वध कराया हो, और, जिसने अपने उपकारी श्रीराम के कार्य को भुलाया हो और अब धर्म से नहीं, लक्ष्मण के भय से उस कार्य के लिये हमें भेजा हो, वह धर्मात्मा कैसे कहा जा सकता है ? (सर्ग ५५·३-६) उससे तो बचना कठिन है; मैं तो यहीं प्राण गँवा दूँगा," यह कह कर अङ्गद शोक से मूर्च्छित हो गये और सब वानर उन्हें जल द्वारा सचेत करने और विलाप करने लगे, और, राम वन गमन, सीता हरण, जटायु मरण, सुग्रीव मिलन, वाली हनन प्रसंग पर वार्त्ता करने लगे। (२१,·२२) जिसे सुन कर एक गुफा में से महाकाय संपाती निकला।

अंगद ने उसके पास जाकर बताया, "ऋक्षरजा के पुत्र धर्मात्मा वाली का मैं पुत्र 'अंगद' हूँ। (सर्ग ५७·५, ६) भुवन पति दशरथ की आज्ञा से उनके पुत्र श्रीराम अपनी पत्नी सीता और भाई लक्ष्मण के साथ वनवास को आये थे। सीता को कोई राक्षस हर ले गया। जटायु ने अपने सखा दशरथ की पुत्र-वधू सीता के करुणावचन सुनकर उसे छुड़ाने में अपने प्राण गँवाये। श्रीराम ने उनका दाह कर्म किया। (११) फिर हमारे चाचा सुग्रीव

आश्रम चली गई।

[६]

अवधि बीती जा रही थी। सब वानर व्याकुल हुये कि अब तो हम सब प्राण दण्ड के भागी हुये। अंगद विशेष चिन्तित हुये। जाम्वन्त ने कहा कि बिना सीता का समाचार पाये हुये हम लोग न लौटेंगे। सब वानर वहीं बैठ कर राम की चरचा करने लगे। जाम्वन्त ने कहा, "राम ईश्वर के अवतार हैं, सब ऋषि मुनि उनके सेवक हैं।" राम चरचा करते समय जटायु-मरण का प्रसंग भी आया जिसे सुन कर एक गुफा में से संपाती निकला और बोला, "तुम मुझे समुद्र के समीप ले चलो ताकि मैं अपने मृत भाई जटायु को जलदान दूँ; फिर मैं तुम्हारी सहायता करूँगा। सीता तुम्हें मिल जायँगी।"

[७]

अपने मृत भाई जटायु को जलदान देकर संपाती ने अपनी कथा सुनाई कि हम दोनों भाई अपनी तरुण अवस्था में उड़ कर सूर्य के समीप पहुँचे। मेरा भाई जटायु तो तेज न सह सका और लौट आया। मैं गर्व के मारे सूर्य के अति निकट चला गया तो जल गया और चिल्लाता हुआ गिर पड़ा। चन्द्रमा नामक एक मुनि थे; उन्हें मुझ पर दया आ गई। उनके ज्ञानोपदेश द्वारा मेरा शरीर से उत्पन्न हुआ अभिमान दूर हो गया कि मैं कुलीन सुन्दर बली आदि हूँ। उन्होंने बताया, "त्रेता में परमेश्वर राम का अवतार लेंगे। उनकी स्त्री को निशाचरों का राजा हरने जायगा; उसकी खोज में दूत आयेंगे; उनसे मिल कर तुम पवित्र

से श्रीराम की मित्रता हो गई। सुग्रीव के कहने से हमारे पिता वाली को श्रीराम ने मारकर सुग्रीव को राज्य दिलाया। (१२,१३) सुग्रीव ने हमें सीता जी की खोज के लिये भेजा है। (१४) परन्तु सुग्रीव की नियत की हुई अवधि बीत गई, उसी भय से हम जीवन से हताश हो रहे हैं।" (१८)

[७]

जटायु की मृत्यु का समाचार पाकर संपाती रोकर कहने लगे, "वानरों! तुम जिसे राक्षस के हाथ से मारा गया बताते हो, वह जटायु मेरा छोटा भाई था। (सर्ग ५८·२) मैं और जटायु दोनों एक बार बल परीक्षार्थ आकाश को उड़े। मैं सूर्य के तेज से जल कर गिर पड़ा परन्तु जटायु पहले ही उतर आया था।" अंगद ने कहा, "आप भी श्रीराम की सहायता कीजिये।" संपाती ने कहा, "मैं वृद्ध हूँ किन्तु वचन द्वारा सहायता कर सकता हूँ। (५८·१२) मैंने रावण को सीता को लिये जाते हुये देखा है। सीता राम और लक्ष्मण को पुकारती जाती थी। विश्रवा ऋषि का पुत्र, कुवेर का भाई रावण यहाँ से सौ योजन की दूरी पर विश्वकर्मा की बनाई हुई सुवर्ण के बने द्वार और सोने की वेदियों वाली लंका में रहता है। वानरों! तुम वहाँ शीघ्र जाओ, तुम सीता को पाओगे। मैं अपनी ज्ञान दृष्टि से देखकर कहता हूँ कि तुम सीता को देखकर लौटोगे।" (५८·२५)

अंगदादि वानर समुद्र लाँघ कर लंकापुरी जाने का विचार करने लगे। अंगद समुद्र पार जा सकते थे परन्तु लौटने में सन्देह था। युवराज अंगद का भेजना उचित नहीं समझा गया। जाम्वान वृद्ध थे। अन्त में जाम्वान ने हनुमान से कहा, "तुम वानरराज केसरी और महात्मा कुञ्जर की कन्या अन्जनी के सुपुत्र हो! देश काल तथा शास्त्र ज्ञान में प्रवीण हो; पराक्रम

हो जाओगे। उन्हें सीता का पता बता देना।" सो मुनि की यह वाणी आज सत्य हुई। तुम सब अब स्वामी का काज करो। समुद्र पार त्रिकूट पर्वत पर लंका में रावण है; उसमें आशोक वन में सीता चिन्ता में पड़ी रहती है। तुम उसे नहीं देख सकते हो; मैं देख रहा हूँ क्योंकि गीधों की दृष्टि तेज़ होती है। मैं अति वृद्ध हो गया हूँ, विवश हूँ, नहीं तो और कुछ सहायता करता। इस समुद्र को जो पार कर जायगा, वह राम काज सँवारेगा। जिसके नाम लेने से पापी भी भवसागर तर जाते हैं, उसके दूत तुम लोग कायरता त्याग करके उपाय करो।"

संपाती के चले जाने पर सब अपने-अपने बल का अनुमान करने लगे। जामवन्त ने कहा, "मैं तो अब वृद्ध हुआ। मेरी तरुणाई में जब भगवान वामन से त्रिविक्रम का रूप बना कर बलि को बाँधने लगे तब उतनी ही देर में मैंने दौड़ कर उस विशाल रूप की सात बार प्रदक्षिणा की थी।" अंगद ने कहा, "मैं समुद्र के पार तो जा सकता हूँ परन्तु लौटने में सन्देह है।" जाम्वन्त ने अंगद को सब का नायक होने के कारण जाने से रोका और हनुमान से कहा, "आप क्या सोच कर चुप हो? आप तो वायु के पुत्र वायु के समान वेगवान हैं, बुद्धि विवेक और ज्ञान की खान हैं। आप कौन काम नहीं कर सकते? आप तो राम काज करने के लिये ही अवतरित हुये हैं!" यह सुनते ही हनुमान का आकार फूल कर पर्वत के आकार का सा हो गया; उनका रंग सोना जैसा दमकने लगा। वह गरज कर बोले, "अगर कहो तो समुद्र पार कर के, रावण को सकुटुम्ब मार कर

में सुग्रीव के समान हो; बल और तेज में राम, लक्ष्मण के समान हो; तुम समुद्र लाँघने का उद्योग करो; वानर सेना तुम्हारा पराक्रम देखे !" (सर्ग ६६) प्रेरणा पाकर हनुमान जी का स्वाभिमान जागृत हो उठा। (६६·३७) जिस प्रकार शेर अँगड़ाई लेकर अपना शरीर बढाता है उसी प्रकार हनुमान जी ने अपना शरीर बढ़ाया और वह समुद्र पार करने को उद्यत हो गये। (६७·३) सब वानर हर्ष मनाने लगे। हनुमान प्रसन्नवदन गर्व से बोले, "हे वानर बन्धुओं ! मैं समुद्र में खलबली मचा दूँगा और वेग से समुद्र पार करके वापस आऊँगा।" हनुमान ने वानरों के मन में उत्साह भर दिया। सब वानर प्रसन्न होकर हनुमान जी की स्तुति करने लगे और बोले, "हम एक पग पर खड़े होकर आप के लौटने की प्रतीक्षा करते रहेंगे।" हनुमान जी लङ्कापुरी जाने को तत्पर हुये। (सर्ग ६७·३४)

ओ३म् ओ३म् ओ३म् ओ३म् , ओ३म् ओ३म् ओ३म् ओ३म्
ओ३म् ब्रह्म ओ३म् ब्रह्म , ब्रह्म ब्रह्म ओ३म् ओ३म्
ओ३म् भूः ओ३म् भुवः , ओ३म् स्वः ओ३म् सत्यम्

त्रिकूटाचल पर्वत को उखाड़ कर यहाँ ले आऊँ ? हे जामवन्त ! मैं तुमसे पूँछता हूँ। तुम मुझे उचित सीख दो।" जामवन्त ने कहा, "हे तात ! तुम जाकर इतना ही करो कि सीता को देख कर आ जाओ और उनकी खबर लाकर दो। तब फिर राम कौतुक (युद्ध की शोभा) के लिये वानरों की सेना सहित जाकर अपने भुजबल द्वारा निशचरों का संहार करके सीता को ले आयेंगे।

त्रिलोक को पवित्र करने वाले राम के सुयश को देवता और नारद आदि मुनि वर्णन करेंगे। जो मनुष्य इस चरित्र को सुनेंगे गायेंगे समझेंगे मनन करेंगे वह परम पद को प्राप्त होंगे। रामचन्द्र के चरण कमलों के भ्रमर तुलसीदास कहते हैं कि जो स्त्री पुरुष रघुनाथ जी का यश सुनेंगे, उनका मनोरथ रामचन्द्र जी पूरा करेंगे। जिसका नाम पापों का नाश करने वाला है उसके गुण समूहों को सुनना चाहिये।

कौन हो आये हो क्यों यह जान लो,
अपने सिरजनहार को पहचान लो,
ताकि मानुष जन्म स्वारथ हो सके,
सत्कथन, सत्कर्म करना मान लो ! (चं० प्र०)

नश्वर शरीर में है बसी आत्मा अमर,
उन्नत हो जिससे आत्मा वह कर्म श्रेष्ठ कर,
उन्नति करे जो आत्मा की तन तो धन्य है,
सेवा में अन्यथा न तन नश्वर के व्यर्थ मर। (चं० प्र०)

कली सत्य और बुद्धि की जब खिली,
तो नर-देह ईश्वर-कृपा से मिली,
रहा सत्य पर दृढ़ बढ़ा ज्ञान भी,
उसे शान्ति जीवन, निधन में मिली। (चं० प्र०)

ॐ

दत्तमिष्टं हुतं चैव तप्तानि च तपांसि च ।
वेदाः सत्य प्रतिष्ठानास्तस्मात सत्य परो भवेत ॥
(रामचन्द्र, वा० रा०, अयो० कां०, सर्ग १०९-१४)

[दान, यज्ञ, होम, तपस्या और वेद—इन सबका आधार सत्य है; इसलिये सबको सत्य परायण होना चाहिये ।]

वेद, और, धर्म का सत्य आधार है,
सत्य पथ पर ही चलना सदाचार है ।
धन्य सज्जन हैं सत्य परायण अहा !
सत्य ही जिनका बस जीवन आधार है ॥ चं० प्र०

वाल्मीकि रामायण

(संक्षिप्त)

सुन्दर कांड

(१)

शत्रु नाशक हनुमान ने रावण द्वारा हर कर ले जाई गई सीता को ढूँढ़ने की बड़ी उत्साह के साथ तैयारी की (सर्ग १-श्लोक १) वह समुद्र की लहरों को छाती से तोड़ते हुये वेग से चले । मैनाक पर्वत को हाथ से छू कर आकाश मार्ग से आगे बढ़े । समुद्र पार तट के निकट सुरसा ने हनुमान को निगलने के लिये मुँह फैलाया; हनुमान भी अपना शरीर फुलाते गये; फिर एकाएक अपना शरीर छोटा करके हनुमान सुरसा के बदन में पैठ कर बाहर निकल आये । आगे बढ़े तो सिंहिका नामी राक्षसी मिली । हनुमान ने उसका उदर फाड़ कर अन्त:

ॐ

सत्यसंध पालक स्रुति सेतू।
राम जनम जग मंगल हेतू ॥

(वसिष्ठ, तु० रा०, २२४—२)

[रामचन्द्र जी सत्यसंध (प्रतिज्ञा के सत्य करने वाले) और वेदों की मर्यादा के रक्षक हैं। रामचन्द्र जी का जन्म जगत के कल्याण के लिये हुआ है।]

राम सत्यसंध धर्मपाल और दयाल थे,
दीन और सत्यप्रेमी पर सदा कृपाल थे।
राम ने दिखाया पथ जगत को सदाचार का,
अनुसरण जो करते थे सुजन सदा निहाल थे ॥ चं० प्र०

तुलसी रामायण

(संक्षिप्त)

सुन्दर कांड

[१]

अपार महिमा सम्पन्न, देवताओं में प्रधान, रघुकुल भूषण, राम-नाम धारी हरि को मैं प्रणाम करता हूँ। हे रघुपति! मैं सत्य कहता हूँ कि मेरे हृदय में अन्य अभिलाषा कोई नहीं; मेरे चित्त को कामादि दोष रहित कर के मुझे भक्ति प्रदान करो!

अनुपम बल सम्पन्न, राक्षस रूपी वन दावानल, परम श्रेष्ठ ज्ञानी श्री रामचन्द्र के श्रेष्ठ दूत पवनसुत को मैं नमस्कार करता हूँ।

'जब तक मैं सीता जी का समाचार लेकर न लौटूँ आप

कर दिया। अपार सागर पार करके महाबली हनुमान ने त्रिकूट पर्वत पर स्थित लंकापुरी को देखा। (स० २·१) वह मानों सुवर्ण से मढ़ी अति मनोहर इन्द्रपुरी समान रमणीक दिखाई देती थी; उसके चारों ओर परकोटे बने थे, (१६) उसकी रक्षा क्रूर बलवान राक्षस कर रहे थे। हनुमान ने सोचा कि रक्षकों की दृष्टि बचा कर नगर में प्रवेश करना चाहिये। (३३-३८) अतः 'मैं सूर्यास्त हो जाने पर प्रवेश करूँगा।' (४६) रात हो जाने पर महाबली हनुमान ने लंका नगरी में प्रवेश किया। (स० ३·२) और उसकी शोभा देख कर प्रसन्न हो गये। उस समृद्धिशाली पुरी में सब ओर सुवर्ण के द्वार और मणियों की वेदी, मोती हीरे स्फटिक जड़े हुये चबूतरे ज़ीने आँगन देख कर हनुमान को बड़ा आश्चर्य हुआ। (३·७-१३)

हनुमान प्रहस्त कुम्भकरण विभीषण आदि प्रसिद्ध राक्षसों के ऊँचे-ऊँचे प्रासादों में घूमते-घूमते रावण के भवन में पहुँचे जिसकी रक्षा बड़े भयंकर राक्षस कर रहे थे। (सर्ग ६·३) उसमें *भेरी और शंखों की ध्वनि हो रही थी क्योंकि राक्षस नित्य पूजा पाठ करते थे और अमावस्या और पूर्णमासी पर विशेष यज्ञ किया करते थे।* (सर्ग ६·१२) सीता को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते हनुमान ने सब ओर चक्कर लगाये (९·३) वह दिव्य पुष्पक विमान पर चढ़ गये (१९) वहाँ से उन्होंने एक बड़ा और सुसज्जित कमरा देखा; वह रावण का कमरा था, उसमें स्वर्ण की जालियाँ, फ़र्श पर स्फटिक हाथी-दाँत मुक्ता सोना चाँदी जड़े थे, धूप तथा अगर, जल रहे थे। (२४) रावण के पैरों की ओर अनेक चन्द्रमुखी स्त्रियाँ सो रही थीं। (१०·३०) उन सब से पृथक एक सुन्दर पलंग पर एक दूसरी स्वर्ण समान दमकते गौर वर्ण की अपार सुन्दरी रावण की पत्नी मन्दोदरी थी। (५१, ५२) हनुमान उसे सीता समझ कर हर्षित हुये। (५३) फिर सोचने लगे कि सीता तो राम के विरह में न सो सकती है, न भोजन कर सकती है, न अलंकार

यहीं रहें !' यह कह कर हनुमान ने सब को मस्तक नवाया और राम को सुमिरन करके प्रस्थान किया। समुद्र के किनारे सुन्दर पर्वत पर वह कूद कर जा पहुँचे और गर्जन कर के रामबाण-समान वेग से चले। समुद्र ने मैनाक पर्वत से कहा कि "हनुमान राम के दूत हैं तू इनके श्रम को मिटाने वाला हो।" वह ऊँचा उठा और हनुमान उसको छूकर प्रणाम करके आगे बढ़े। सुरसा हनुमान को निगलने के लिये मुँह फैलाने लगी; हनुमान भी अपना शरीर फुला कर दुगना करते गये। बढ़ाते-बढ़ाते सुरसा ने अपना मुँह सौ योजन का कर लिया। तब हनुमान ने अपना शरीर नितान्त छोटा कर के उसके मुँह में प्रवेश किया और बाहर निकल आये। "मैंने देवताओं के कहने से तुम्हारी परीक्षा ली", यह कह कर सुरसा हनुमान को आशीर्वाद देकर चली गई। हनुमान जी प्रसन्न होकर आगे बढ़े। फिर एक राक्षसी मिली जो उड़ते हुये पक्षियों को पकड़ कर खा जाती थी। हनुमान ने उसके छल को जान लिया और उसको मार कर वह समुद्र पार पहुँच गये और वन की शोभा देखने लगे। सामने एक विशाल पर्वत पर हनुमान चढ़ गये; वहाँ से उनको लंका का भारी क़िला दिखाई दिया; चारों ओर समुद्र घेरा डाले था; आस पास बहुत से सोने के चमकीले रत्नजड़ित परकोटे थे; भीतर अति सुन्दर नगर बसा था जिसकी रक्षा विकराल राक्षस योद्धा कर रहे थे। अतः हनुमान ने रात्रि में प्रवेश किया। नगर के द्वार पर लंकिनी नाम की राक्षसी का सामना हुआ; हनुमान ने उसके घूँसा मारा, वह खून थूकती हुई गिर पड़ी और बोली, "मेरा बड़ा सौभाग्य है जो रामदूत के दर्शन मुझे मिले : सत्संग से बढ़ कर कोई सुख नहीं। तुम राम का सुमिरन कर के नगर में प्रवेश करो। क्योंकि राम कृपा से विष अमृत, शत्रु मित्र, अग्नि शीतल और समुद्र गोपद-समान हो जाता है।

हनुमान ने छोटा रूप धारण किया और राम को सुमिरन

धारण कर सकती है, न पर-पुरुष का संग कर सकती है (११·३) यह कोई दूसरी ही स्त्री है। हनुमान वहाँ से रावण की मधुशाला में पहुँचे; वहाँ भी सीता न मिलीं। (४) हनुमान निराश होने लगे; फिर सोचने लगे कि *लग्न से कार्य करते रहना ही सफलता देता है, अतः ढूँढ़ने की फिर चेष्टा करता हूँ।* उन्होंने अन्य सब स्थान भी ढूँढ़ डाले। (१२·१८) जनकनन्दिनी का कहीं पता न लगा। (२०) हनुमान विषाद और चिन्ता में पड़ गये। (२४)

[२]

हनुमान सोचने लगे कि यदि मैं जाकर परम प्रिय राम से कहूँगा कि मैंने सीता को नहीं पाया तो सुनते ही वह प्राण छोड़ देंगे। (सर्ग १३·२४) अतः सीता का पता यदि न लगा तो समुद्र में डूब कर मैं प्राण खो दूँगा (४४) परन्तु यों *प्राण खोने में दोष है, जीता हुआ प्राणी कल्याण पा ही लेता है।* (४७) फिर हनुमान के हृदय में 'धर्म' जागृत हो गया। वह सोचने लगे कि या तो रावण को मार कर सीता का बदला ही चुका लूँ (५०) या जब तक सीता न मिलें, बराबर उनको ढूँढ़ता रहूँगा। (५३)

यह जो बड़-बड़े वृक्ष वाली अशोक वाटिका है, चलूँ इसमें भी तो ढूँढ़ूँ, (५६) सीता इस वाटिका में अवश्य आती होंगी। (१४·५१) यह सोच कर हनुमान अशोक वाटिका में गये। वहाँ एक दीन क्षीण परन्तु चन्द्रमाँ समान सुन्दर स्त्री हनुमान ने देखी जो रोती और किसी के ध्यान में निमग्न थी (१५·१९,२३) जिसको राक्षसियों ने इस प्रकार घेर रखा था जैसे बिछुड़ी हुई हरिनी को कुत्ते घेर लेते हैं। (२४) हनुमान ने समझ लिया कि सीता यही हैं। हनुमान सोचने लगे कि *पातिव्रतधर्म-मूर्त्ति सीता को भी यदि इतना कष्ट झेलना पड़ रहा है तो यह मानना ही पड़ेगा कि काल किसी के टाले टल नहीं सकता।* (१७·३) इसी सीता के लिये राम ने हज़ारों राक्षसों को मारा, (९) वाली को मारा,

करके नगर में प्रवेश किया। घूमते फिरते वह रावण के विचित्र प्रासाद में पहुँचे; रावण को निद्रा की गोद में देखा; परन्तु वैदेही कहीं दिखाई न पड़ीं। फिर एक सुन्दर भवन दिखाई दिया जिसमें भगवान का मन्दिर और तुलसी के वृक्ष थे। हनुमान सोच ही रहे थे कि यह किसी सज्जन का निवास स्थान है कि उसी क्षण विभीषण जागा और उसके पूँछने पर हनुमान जी ने अपना नाम और वृत्तान्त सुनाया। इस पर दोनों हर्षित हुये। विभीषण ने कहा कि "जैसे दाँतों के बीच अकेली जीभ है वैसे ही राक्षसों के बीच अकेला मेरा निवास है। हे हनुमान! भला रामचन्द्र क्या कभी मुझे सनाथ करेंगे?" हनुमान जी ने कहा, "हे विभीषण! मैं एक बन्दर ही तो हूँ जिसका प्रातःकाल नाम लेने वाले को उस दिन आहार नहीं मिलता। परन्तु मुझ पर प्रभु ने कृपा की है। स्वामी सेवक पर सदा प्रीति करते हैं।" हनुमान के पूँछने पर विभीषण ने जानकी का हाल बताया और अशोक वाटिका में उन्हें देखने को कहा।

[२]

हनुमान जी अशोक वाटिका को चल दिये। वहाँ अशोक के नीचे क्षीण उदासीन दुखी जानकी को बैठा देख कर हनुमान बहुत दुखी हुये। उसी समय रावण कुछ सुन्दरियों के संग वहाँ पहुँचा और सीता को डरा धमका फुसला कर कहने लगा, "मैं तुमको अपनी सब रानियों की शिर-मौर बनाऊँ यदि तू मुझ पर कृपा दृष्टि करे।" परन्तु वैदेही ने उत्तर दिया, "अरे दुष्ट! तू रघुवीर जी की अनुपस्थिति में मुझे अकेला पाकर हर लाया है, तुझे लज्जा भी नहीं आती?" इस पर रावण क्रुद्ध होकर सीता को तलवार से मारने दौड़ा, परन्तु मयासुर की कन्या, रावण-पत्नी मन्दोदरी ने रावण को समझाया, तब रावण ने राक्षसियों से कहा कि "सीता को त्रसित करो। यदि एक मास में मेरा

उसका राज्य सुग्रीव को दिया, (११) मैंने समुद्र पार किया, लंका में चक्कर लगाया, (१२) धर्मात्मा राम की पत्नी सीता यहीं हैं हैं जो राजसुख त्याग कर, वन के दुःखों की परवाह न करके *पातिव्रतधर्म पालन करने* निर्जन वन में आई हैं, *वही कोमलाङ्गिनी सीता* राक्षसियों की अधीनता में *इतने दुःख झेल रही हैं !* (१९-२१)

वाटिका को देखते सीता को खोजते रात्रि का अन्त होने लगा; *हनुमान को वेद-पाठ की ध्वनि सुनाई पड़ी;* (१८·२) मंगल गानों मंगल-वाद्यों की ध्वनि से रावण जागा (३) और सुसज्जित होकर सीता को देखने (६) अशोक वाटिका को चला। (९) हनुमान तेजस्वी रावण के तेज को देखकर प्रभावित हुए; वह अच्छी तरह छिपकर बैठ गये। (२८,३१,३२) रावण को देखते ही यशस्विनी सीता काँप उठीं। (१९·२) राक्षसियों से घिरी दुखी सीता ऐसी दीख पड़ीं जैसे समुद्र में डूबती नौका। (४) अल्पाहार से दुबली पतली तपस्विनी सीता भगवान से रावण के पराजय की रात दिन प्रार्थना करती थी। रावण ने कहा, "हे विशालाक्षी सर्वलोक मनोहर! मैं तुम्हें हृदय से चाहता हूँ, तुम मुझे स्वीकार करलो। (२०·३) बलात् हरण राक्षसों का धर्म है परन्तु मैं तुम्हारी इच्छा विना तुम्हें स्पर्श न करूँगा। (५,६) हे सीता! मैं समझता हूँ कि ब्रह्मा ने तुम को रचकर फिर कोई दूसरी तुम जैसी सुन्दरी नहीं रची। (१३) तुम मेरी महारानी बन जाओ। (१६) हे सीता! श्री हीन वनवासी पृथ्वी पर शयन करने वाले राम को भूल जाओ। राम न तप मे, न बल में, न पराक्रम में और न धन तेज तथा यश में ही मेरे बराबर है।" (२६,३४)

दुःखी तपस्विनी सीता ने कहा, "मैं महान कुल में उत्पन्न, श्रेष्ठ कुल में व्याही हुई पतिव्रता नारी हूँ। मैं तुम्हारी स्त्री नहीं बन सकती। (२१·५,६) हे राक्षसराज! तुम जैसे अपनी

कहना न मान लेगी तो मैं उसे तलवार से मार डालूँगा।"

[३]

रावण तो लौट गया परन्तु राक्षसियाँ सीता को डराने लगीं। एक विचारशील राक्षसी त्रिजटा ने कहा, "मैंने स्वप्न देखा है कि राक्षसों को मार कर रामचन्द्र ने विभीषण को लंका का राजा बना दिया; यह स्वप्न शीघ्र सत्य होगा। तुम सब सीता को त्रसित नहीं; प्रसन्न करो।" सीता ने उससे कहा तू मेरा हित चाहती है; चिता बना कर उसमें आग लगा दे तो मैं देह जला कर प्राण तज दूँ। परन्तु वह यह कह कर कि "रात में आग नहीं मिल सकती" चली गई। सीता जी को रामचन्द्र के विरह में व्याकुल और प्राण देने के लिये चिन्तित देख, पेड़ पर से हनुमान ने रामचन्द्र की दी हुई मुद्रिका गिरा दी जिसको सीता ने झट उठा लिया और देख कर आश्चर्य और चिन्ता में भर गईं। तब हनुमान राम का यशोगान करके सीता के सम्मुख उपस्थित हो गये; उन्होंने सुग्रीव और राम की मित्रता की कथा और राम का वृत्तान्त आदि से अन्त तक कह सुनाया जिससे सीता का आश्चर्य चिन्ता और दुख दूर हुआ। सीता जी ने हनुमान से पूँछा कि "दयासागर रामचन्द्र जी मेरे प्रति निष्ठुर भाव क्यों रखते हैं? कब मेरी सुधि लेंगे?" हनुमान ने रामचन्द्र जी के हृदय में सीता जी के लिये अगाध प्रेम का वर्णन करके कहा, "हे जानकी माता! आप रघुनाथ जी की प्रभुता और सुयश का मन में ध्यान करके चिन्ता और भय को मन से दूर कर दें और धैर्य धारण करें। मैं जाकर रामचन्द्र जी को आपका समाचार दूँगा तो वह शीघ्र वानर सेना के साथ आकर रावण आदि राक्षसों का संहार करके आपको ले जायेंगे।" हनुमान जी की भक्ति तेज और बल से भरी बातें सुन कर सीता जी ने उनको राम का प्यारा समझ कर आशीर्वाद दिया। हनुमान

स्त्री की रक्षा करते हो, वैसे ही दूसरे की स्त्री की भी रक्षा करो। (७) *अनीति में स्थित राजा का राष्ट्र नष्ट हो जाता है :* तेरे कारण लंका शीघ्र नष्ट हो जायगी। (११,१२) जैसे सूर्य की प्रभा उस से पृथक नहीं हो सकती, वैसे ही मैं भी राम को नहीं छोड़ सकती। (१६) तू मुझे ले जाकर उन्हें दे दे (२२) नहीं तो तू मारा जायगा।" (२३) सीता के कठोर वचन सुन रावण बोला, "तुम्हारे प्रति मेरे मन में प्रेम है, वही प्रेम मेरे क्रोध को शान्त कर रहा है। (सर्ग २२·३,५) मैं तुम को दो मास और विचार करने को दे रहा हूँ। (८) यदि फिर भी तुम ने मुझे अपना भर्त्ता बनाना स्वीकार न किया तो मेरे रसोइये तुम्हें मेरा प्रतिराश बनाने के लिये मार डालेंगे।" (९) सीता ने राम के पराक्रम से गर्वित होकर रावण को उत्तर दिया कि, "मैं अनन्त तेजस्वी राम की पत्नी हूँ। तुझ खरगोश समान का हाथी समान रामचन्द्र के हाथों युद्ध में मारा जाना निश्चित है। (१६) यदि तू अधिक बलवान है तो रामचन्द्र जी को आश्रम से हटाकर मुझ उनकी पत्नी को चुराने का दुष्कर्म तूने क्यों किया ?" (२२)

[३]

रावण ने क्रोध से आँखें लाल करके राक्षसियों से कहा, "सीता को डरा धमका कर समझा बुझा कर मेरे अनुकूल करो।" यह कहकर रावण अपने महल में चला गया। तब भयंकर राक्षसियाँ सीता से रावण की बड़ाई करने लगीं; कोई कोई फुसलाने लगीं। एक ने कहा, "शोभने! तुम राज्य से निकाले हुये मारा-मारा फिरने वाले राम पर क्यों अनुरक्त हो ?" (२४·५) सीता ने उत्तर दिया, "*मेरा पति चाहे सुखी हो, चाहे वह दुखी हो, फिर भी वही मेरा पति रहेगा।* (९) सीता के इस वचन पर राक्षसियाँ सीता को कठोर वचनों से डराने धमकाने लगीं।

आनन्द से गद्गद् हो गये और जानकी जी से आज्ञा लेकर उन्होंने वाटिका में फल तोड़ कर खाये और रोकने वालों को मारा।

रावण के पास जब समाचार पहुँचा तो उसने अपने पुत्र अक्षय कुमार को दल बल सहित भेजा। हनुमान ने उसका भी अन्त कर डाला। पुत्र मरण का समाचार पाकर रावण क्रोध से भर गया; उसने महा बलवान मेघनाद (इन्द्रजित) को यह समझा कर भेजा कि "उस कपि को बाँध कर ले आओ, ज़रा मैं देखूँ तो, वह कहाँ का है ?" अपने भाई अक्षय कुमार के मारे जाने से दुखी और क्रुद्ध मेघनाद ने हनुमान को पकड़ने के लिये बलवान राक्षसों के साथ चढ़ाई की। हनुमान ने उसके रथ को तोड़ डाला. योद्धाओं को मार गिराया और घूँसा के प्रहार से मेघनाद को भी अचेत कर दिया। होश में आने पर मेघनाद ने ब्रह्मास्त्र चलाया और हनुमान के मूर्छित हो जाने पर उनको नाग पाश में बाँध कर मेघनाद रावण के पास ले गया। हनुमान ने वहाँ रावण की अवर्णनीय प्रतिभा देखी : देवता और दिक्पाल कर जोड़े खड़े थे। परन्तु हनुमान साँपों के बीच गरुड़ की भाँति राक्षसों के बीच निःशङ्क खड़े थे। अपने पुत्र अक्षय कुमार का बध स्मरण करके रावण दुःख और क्रोध से हनुमान से बोला, "अरे बन्दर ! तू कौन है ? तूने राक्षसों को क्यों मारा ? कदाचित तूने मेरा नाम नहीं सुना !" हनुमान बोले, "रावण, सुन ! जिन्होंने शिव-धनुष भंग किया; खर दूषण त्रिशिरा आदि बलवानों का संहार किया, जिनकी प्यारी पत्नी को तू सूना पाकर हर लाया, मैं उन्हीं रामचन्द्र जी का दूत हूँ। रावण, तेरी प्रभुता मैं जानता हूँ; तुझको ही तो सहस्र बाहु ने क़ैद कर लिया था ! तुझे ही तो वाली बग़ल में दबाये-दबाये छः मास तक घूमता फिरा था ! परन्तु इस कटाक्षपूर्ण वचन को रावण ने ठहाका मार कर टाल दिया। हनुमान ने फिर कहा, "मुझे

हनुमान चुपचाप वृक्ष पर बैठे सुनते रहे। (१४)

सीता दुःख से विलाप करने लगीं, "हा राम! हा लक्ष्मण! हा कौशल्या! हा सुमित्रा! *क्या यह सत्य है कि विना समय आये मृत्यु नहीं आती?* राक्षसियों का इतना त्रास! राम का दुसह्य विरह! फिर भी मेरे प्राण नहीं निकल जाते! *मैंने पूर्व जन्म में ऐसा कौन सा पाप किया है जिसके कारण मुझे इतना भयानक कष्ट भोगना पड़ रहा है?* अच्छा होता जो मैं मर जाती। (सर्ग २५·१८,१९) क्या कारण है जो पराक्रमी राम मुझको अब तक नहीं खोज सके! (२६·१६) रावण ने छल से उनको हानि तो नहीं पहुँचाई? (४५) अब मैं मर जाना चाहती हूँ।" (४६)

सीता की यह बातें सुन कुछ राक्षसियाँ क्रुद्ध हो गईं और बोलीं, "हम आज ही तेरा मांस खा जायँगी।" (२७·३) यह सुन एक विचारशील वृद्धा राक्षसी त्रिजटा बोली, "रामचन्द्र की पत्नी सीता को तुम नहीं खाओगी, अपितु अपने आप को खाओगी। (५) मैंने एक भयानक स्वप्न देखा है कि राक्षसों का नाश होगा और इसके पति की विजय होगी।" (६) ऐसा स्वप्न जिस दुखिया के सम्बन्ध में दिखता है वह अपने कष्टों से छूटकर सुख को प्राप्त होती है। (४३,४४)

हनुमान छिपकर वृक्ष पर बैठे हुये यह सब देख सुन रहे थे। वह मन में सोचने लगे कि मुझे दुखी सीता जी को आश्वासन देना, फिर यहाँ से जाकर रामचन्द्र जी को इनका समाचार देना चाहिये, परन्तु रात्रि समाप्त होने से पहले सीता को धैर्य न दूँगा तो यह कहीं अपने प्राण न तज दें। (३०·१२) ऐसा सोच विचार कर हनुमान मधुर वाणी से सीता को सुनाने के लिये बोलने लगे, (३१·१) "एक इक्ष्वाकु कुलभूषण राजा दशरथ थे। (४) उनको बहुत प्रिय थे ज्येष्ठ पुत्र राम। (६) राम अपने पिता का वचन सत्य करने के लिये अपनी पत्नी

भूख लगी, इसलिये मैंने फल तोड़े और खाये, और जिन्होंने मुझे मारना चाहा उन्हें मैंने मार दिया। रावण तू, दयासागर रामचन्द्र जी की पत्नी जानकी को उन्हें लौटा दे, वह तेरा अपराध क्षमा कर देंगे; तू लंका में अचल राज कर!" यह सुन कर महा अभिमानी रावण सक्रोध बोला, "यह बन्दर तो मेरा गुरु बनता है! इस खल की मृत्यु निकट आ गई है, अरे कोई इसे मार डालो!" ठीक उसी समय मंत्रियों सहित विभीषण वहाँ पहुँचा और बोला, "नाथ, दूत को प्राणदण्ड न देकर कोई और दण्ड दीजिये।" रावण ने कहा, "अच्छा, इसको अंग भंग करके भेजो। इसकी पूँछ में कपड़ा बाँध कर तेल में डुबो कर आग लगा दो। जब बिना पूँछ का बन्दर लौट कर जायगा, तो दुष्ट अपने मालिक को ले आयेगा। तब उसकी प्रभुता मैं देख लूँगा!" रावण की आज्ञा पाते ही राक्षसों ने हनुमान की पूँछ में कपड़ा बाँध, तेल से भिगो, उन्हें नगर में घुमाया और पूँछ में आग लगा दी। हनुमान उछल कर अटारी पर जा पहुँचे, कूद फाँद घरों में आग लगाने लगे। उसी समय वायु का वेग बढ़ा और एक निमिष में हनुमान ने सारा नगर जला डाला; नगर में हाहाकार मच गया। केवल विभीषण का भवन नहीं जलाया।

फिर हनुमान जाकर समुद्र में कूद पड़े और अपनी पूँछ बुझा कर जानकी जी के सम्मुख कर जोड़ कर खड़े हुये और बोले, "माता, जिस तरह रामचन्द्र जी ने मुझे चिह्न दिया था, आप भी कोई चिह्न दीजिये।" तब सीता ने मस्तक का चूड़ामणि उतार कर दिया और कहा, "हे तात! स्वामी से कहना कि आप दीन दयाल हैं; अपनी प्रतिज्ञा सँभाल कर मेरा संकट दूर करें। यदि एक मास के भीतर स्वामी न आ पहुँचे तो मुझे जीवित न पायेंगे।" जानकी जी को समझा और धैर्य बँधा कर हनुमान उनको मस्तक नवाकर वहाँ से चले। हनुमान ने भयानक गरजना की जिसे सुनते ही राक्षसियों के गर्भपात हो

सीता और अपने छोटे भाई लक्ष्मण को लेकर वन में आकर रहने लगे। (८) उन्होंने वन में राक्षसों को मार डाला। (९) इस पर राक्षसराज रावन ने राम की पत्नी का हरण कर लिया। (१०) फिर वन में सीता को ढूँढ़ते हुये राम की वानरेश सुग्रीव से मित्रता हो गई। अब हज़ारों वानर सीता को ढूँढ़ रहे हैं। मैंने सीता को ढूँढ़ने के लिये समुद्र लाँघा है। (१४) जैसे मैंने राम से सीता के रूप का वर्णन सुना था इस देवी का रूप वैसा ही है।" यह कहकर हनुमान चुप हो गये। (१६) सीता मुख पर से बालों को हटाकर ऊपर वृक्ष की ओर देखने लगीं।

हनुमान ने सीता के समीप आकर प्रणाम करके हाथ जोड़ कर मधुर वाणी में सीता से कहा, "आप कौन हैं? क्या आप प्रतापी राम की रानी हैं?" (३३·१४) सीता ने कहा, "मैं पुरुषोत्तम राम की भार्या हूँ। (१६,१७) सौतेली माता रानी कैकेई के कहने से पितृ भक्त राम ने अपने राज्याभिषेक से बढ़ कर पिता के वचन को सत्य करना प्रिय समझा और उन्होंने वनवास स्वीकार किया। (२२) राम के साथ उनके छोटे भाई लक्ष्मण और मैं सब वन में रहने लगे। रावण ने मुझे हर लिया है। दो मास बाद मैं अपने प्राण गँवा दूँगी।" (३१)

हनुमान ने कहा, "राम, लक्ष्मण सकुशल हैं। मैं उनका दूत आप का कुशल समाचार लेने आया हूँ।" (३४·२) नरश्रेष्ठ राम और लक्ष्मण का कुशल समाचार पाकर सीता हर्ष से रोमांचित हो गईं। (५) फिर सीता के मन में यह सन्देह उत्पन्न हुआ कि रावण रूप बदल कर फिर कहीं न आया हो (१०) वह फिर चिन्तित हो गईं। (११) हनुमान ने इसे भाँप लिया और मधुर वचनों से सीता को प्रसन्न करने को उन्होंने कहा, "मैं सुग्रीव का मन्त्री हनुमान हूँ; आप मेरी ओर से मन में चिन्ता न लायें। (४१) हे महा भागे सीता! देखो, राम-नाम से अंकित

गया। हनुमान समुद्र उल्लंघन करके इस पार आ गये।

[४]

हनुमान को प्रसन्न देख बन्दरों ने समझ लिया कि वह राम का कार्य सिद्ध कर आये। बड़े हर्ष से वह सब रामचन्द्र जी के पास चले। मधुवन में पहुँच कर अंगद की अनुमति से सब फल खाने लगे, रोके जाने पर रखवारों को मुष्टि प्रहार करने लगे। जब सुग्रीव के पास यह समाचार पहुँचा तो उन्होंने समझ लिया कि बन्दर स्वामी का कार्य सिद्ध करने पर मोद मना रहे हैं। इतने में सभों ने पहुँच कर कार्य सिद्ध कर आने का सुखद सन्देश सुनाया। सब लोग तुरन्त रामचन्द्र जी के पास पहुँचे। जाम्वान ने हनुमान के चरित्र रामचन्द्र जी को सुनाये। रामचन्द्र ने प्रसन्न होकर हनुमान को गले से लगा लिया और पूँछा, "कहो, जानकी किस तरह रहती, अपने प्राणों की रक्षा करती हैं?" हनुमान जी ने कहा, "स्वामिन्! सीता जी ध्यानावस्थित हो सदा आपका नाम जपन करती रहती हैं। चलते समय उन्होंने यह चिह्न चूड़ामणि दिया", ऐसा कह कर वह चूड़ामणि हनुमान ने रामचन्द्र जी के हाथ में दे दिया। रामचन्द्र जी ने झट उसे हृदय से लगा लिया। हनुमान ने कहा, "जानकी माता ने सजल नेत्र होकर कहा है कि 'मन वचन काया से श्री चरणों की मुझ अनुचरी को स्वामी ने किस अपराध से विसार रखा है?' हे दीन दयाल! सीता जी का एक-एक निमेष कल्प समान बीतता है। अतः नाथ! शीघ्र चलिये और दुष्टों का संहार कर सीता जी को ले आइये।" सीता जी का दुख सुन कर रामचन्द्र जी की आँखों में आँसू भर आये। रामचन्द्र जी ने हनुमान से कहा, "हे वानर! तुम्हारे बराबर उपकारी शरीर धारी कोई नहीं! मैं तुम्हारा क्या प्रत्युपकार करूँ?" यह कहते-कहते रामचन्द्र के नेत्र सजल हो गये, शरीर में रोमावली खड़ी

यह अँगूठी राम ने आपको विश्वास दिलाने के लिये मुझे दी है। हे देवि! धैर्य धारण करो; आपके दुखों का अन्त होने वाला है।" (सर्ग ३६·३) सीता अपने पति राम की अँगूठी लेकर प्रसन्न हो (५,६) बोलीं, "हे वानर! अजेय रामचन्द्र जी ने तुमको विश्वासपात्र जानकर ही मेरे पास भेजा है। (११) राम मुझे कब यहाँ से ले जायँगे? क्या भरत सेना भेजेंगे? क्या सुग्रीव यहाँ आयेंगे? क्या लक्ष्मण अस्त्र वर्षा से राक्षसों का संहार कर डालेंगे? क्या मैं शीघ्र ही राम द्वारा रावण और उसकी सेना को युद्ध में मरा हुआ देखूँगी?" (२३-२७) पराक्रमी हनुमान ने हाथ जोड़कर कहा, "जब मैं लौटकर रामचन्द्र जी को आप का समाचार दूँगा तो वह वानरों की भारी सेना सहित तुरन्त चल खड़े होंगे। (३४) समुद्र को अपने बाणों से सुखा देंगे; लंका नगरी को रावणादि राक्षसों से रहित कर डालेंगे। (३६) हे आर्ये! राम आपके वियोग से दुखी हैं, आपके विना उन्हें शान्ति नहीं।" (३७)

सीता हनुमान के वचन सुनकर बोलीं, "हे वानर! तुम जाकर रामचन्द्र जी से कहना कि यहाँ आने में शीघ्रता करें। (सर्ग ३७·७) रावण ने मुझे जीने के लिये दो मास दिये हैं। (८) रावण के भाई विभीषण ने मुझे लौटाने के लिये रावण को समझाया परन्तु मेरा लौटाना रावण को अच्छा नहीं लगता। (१०) विभीषण की बड़ी पुत्री अनला को उसकी माता ने भेजा था, वह बता गई है।" (११) हनुमान बोले, "मेरे द्वारा आपका समाचार पाते ही रामचन्द्र वानर सेना सहित यहाँ आ जायेंगे। (२०) हे सीता! अपनी पीठ पर बैठा कर मैं आपको राम के पास आज ही पहुँचा सकता हूँ।" (२२,२३) सीता ने हर्ष और विस्मय के साथ कहा, "मैं पतिव्रता हूँ, राम के अतिरिक्त किसी और के शरीर का स्पर्श करना नहीं चाहती। राम यहाँ आकर राक्षसों का सहार करके मुझे यहाँ से ले चलें, यही

हो गई। हनुमान भी प्रसन्न हो श्री चरणों में गिर पड़े। रामचन्द्र जी ने हनुमान को उठाकर अपने पास बिठा लिया और पूँछा, "रावण द्वारा पालित लंका को तुमने कैसे जलाया ?" हनुमान ने कहा, "स्वामी, आपके प्रताप से मैंने समुद्र उल्लंघन किया, लंका जलाया, राक्षसों का हनन किया। हे नाथ ! जिस पर अनुकूल हों आप, उसके लिये कुछ भी अगम नहीं !"

फिर रामचन्द्र ने वानरराज सुग्रीव को बुलाकर कहा कि "अब विलम्ब क्यों किया जाय ! चलने की तैयारी करो।" सुग्रीव ने शीघ्र ही टोलियों के नायकों को बुला कर चलने की आज्ञा दी। उसी समय बलशाली बन्दरों और रीछों के दल के दल एकत्रित हो गये और रामचन्द्र जी के चरणों में मस्तक नवा कर गरजना करने लगे। रामचन्द्र जी ने कपि भालु सेना संग प्रसन्न होकर प्रस्थान किया, और सारी सेना पृथ्वी और आकाश मार्ग से चल कर सागर तट पर जा पहुँची।

उधर लंका में हनुमान के लौट आने पर बड़ी घबड़ाहट मची। मन्दोदरी ने रावण को समझाया कि "हे कन्त ! मन्त्री के द्वारा सीता को लौटा दो। जिसके दूत के गरजना करने से स्त्रियों के गर्भपात हो गये उसकी समस्त सेना के आने पर तो सर्वनाश ही हो जायगा।" महा अभिमानी रावण मन्दोदरी की बात सुनकर हँसा और बोला, "सचमुच नारियाँ स्वभाव से ही कायर होती हैं। ओह, जिसके भय से लोकपाल (इन्द्र आदि) काँपते हों उसकी पत्नी इतनी भीरु हो !" यह कह कर रावण जब सभा में गया तो उसे समाचार मिला कि वानर सेना समुद्र तट पर आ गई है। रावण ने मन्त्रियों से परामर्श किया। वह सब बोले, "आप चिन्ता न करें। आपने देवताओं और दैत्यों को जीता है, मनुष्य और बन्दर किस गिनती में हैं !" जब मन्त्री, वैद्य या गुरु भय अथवा लालच से मधुर वचन बोलें तो राज्य, तन या धर्म का शीघ्र नाश समझना चाहिये ! सब

उचित होगा।" (६४) तत्पश्चात् सीता ने हनुमान को अपनी चूड़ामणि दी और कहा कि "इसे देखकर वीर राम अपनी माता, राजा दशरथ और मुझे स्मरण कर लेंगे (३९·२) मैं आपत्ति काल में इसे देख कर प्रसन्न होती हूँ, वह भी मैं भेजे देती हूं (४०·५) रावण बड़ा क्रूर है। रामचन्द्र जी आने में विलम्ब करेंगे तो मुझे जीवित न पायेंगे।" (११) हनुमान ने सीता के दीन वचन सुनकर कहा, "शत्रुनाशक राम शीघ्र रावण को मारकर आपको अयोध्या ले जायेंगे।" (१६)

[४]

इस प्रकार सीता को आश्वासन देकर हनुमान सीता के पास से चले आये। उन्होंने अशोक वन को उजाड़ डाला; जलाशयों और शिखरों को तोड़ डाला। (४१·१६) राक्षसियाँ सीता से पूँछने लगीं कि "यह कौन है ? कहाँ से और क्यों आया है ?" (४२·४,६) राक्षसियाँ डरीं और इधर उधर भागीं। कुछ ने जाकर रावण को बताया। (११) रावण क्रोध से भर गया और हनुमान को दण्ड देने के लिये राक्षसों को भेजा; उन्होंने हनुमान को घेर लिया। (२८,२९) हनुमान ने परिघ को उठाकर राक्षसों पर प्रहार किया, कुछ का अन्त हो गया. (४१) कुछ बचे, उन्होंने जाकर रावण को समाचार दिया।

रावण ने सात वीर मन्त्रि पुत्रों को हनुमान को पकड़ने के लिये भेजा, उनको भी हनुमान ने मार डाला (४५·१४) इस समाचार को पाकर रावण ने पाँच सेना पतियों को भेजा। हनुमान ने उनका भी अन्त कर डाला। (४६·३७)

तब रावण ने इन्द्रजीत से कहा कि "वानर ने तुम्हारे भाई अक्षय कुमार को भी मार डाला; तुम्हारे समान कोई योद्धा नहीं, अतः अब तुम्हें जाना चाहिये।" (४८·१३) रथ पर बैठ सेना सहित इन्द्रजीत हनुमान के पास पहुँचा और युद्ध में भिड़

'हाँ में हाँ' मिला रहे थे कि उसी समय विभीषण ने आकर सीस नवा कर कहा कि "यदि आप कल्याण सुयश और सुख चाहते हैं तो पराई स्त्री को त्याग दें। काम क्रोध मद लोभ यह नरक ले जाने वाले सब त्याज्य हैं। आप रामचन्द्र जी की स्त्री जानकी उनको लौटा दें!" रावण के मन्त्री माल्यवन्त ने भी इसका समर्थन किया। यह सुनते ही रावण बड़े क्रोध से बोला कि "इन शत्रु का पक्ष लेने वालों को निकाल दो।" माल्यवन्त तो अपने घर दिया, परन्तु विभीषण ने फिर भी कर जोड़ कर रावण को समझाया कि "मोह न करके सीता रामचन्द्र को लौटा दें ताकि आपका अनहित न हो।" इस बात पर रावण के क्रोध का पारा चढ़ गया, वह बोला, "तू शत्रु का पक्ष लेता है। अरे दुष्ट! जा, तू उसी को नीति सिखा", यह कहते हुये रावण ने विभीषण को चरण प्रहार किया। विभीषण ने बार-बार पाँव पकड़ कर कहा कि "आप पिता तुल्य हैं! अच्छा मैं रघुवीर के पास जाता हूँ" यह कहते हुये विभीषण आकाश मार्ग से चल दिया; मानों राक्षस आयुषहीन हो गये क्योंकि साधु पुरुष का तिरस्कार कल्याणों का नाश कर देता है। विभीषण राम के दर्शन के प्रेम में निमग्न समुद्र पार पहुँचा। उसको रावण का दूत समझ कर सुग्रीव ने राम से कहा कि "रावण का भाई विभीषण आया है।" राम ने हँसते हुये कहा कि "मित्र! मैं तो शरणागत का रक्षक हूँ। यदि वह दुष्ट हृदय होता तो क्या कभी मेरे सम्मुख आता? और यदि भेद लेने आया है तो भी हमें भय नहीं; उसको ले आओ।" सुग्रीव हनुमान अंगद आदि विभीषण को रामचन्द्र जी के पास ले आये। शोभाधाम श्रीराम के दर्शन पाते ही श्रद्धा से विभीषण के नेत्र सजल और शरीर पुलकित हो गया। यह कहते हुये कि "हे नाथ! मैं राक्षस हूँ, पापवृत्ति, मन्द बुद्धि और रावण का भाई हूँ। आपका सुयश सुन कर आपकी शरण में आया हूँ। रक्षा करो, रक्षा करो!"

गया। (३२) अन्त में महा तेजस्वी इन्द्रजीत ने हनुमान की ओर पितामह से प्राप्त अस्त्र का संधान किया, हनुमान को बाँध लिया और रावण के पास ले गया। (५२) रावण का तेज देख हनुमान बहुत प्रभावित हुये। रावण क्रोध के साथ अपने सर्व श्रेष्ठ मन्त्री प्रहस्त से बोला कि "इससे पूँछो यह कौन है? कहाँ से और क्यों आया है? इसने वाटिका क्यों उजाड़ी, राक्षसों को क्यों मारा?" (५०·५) प्रहस्त ने हनुमान से कहा कि तुम सच सच बताओ तो छोड़ दिये जाओगे, अन्यथा जान से हाथ धोना पड़ेगा। (११)

हनुमान बोले, "मैं वानर हूँ। मैंने वन उजाड़ा ताकि लंका पति के पास लाया जाऊँ (१५) मैंने अपने प्राण रक्षा के लिये राक्षसों को मारा। मैं पराक्रमी राम का दूत हूँ। राम की स्त्री को राक्षस हर ले गये। राम से सुग्रीव की मित्रता हो गई। राम ने वाली को मारकर सुग्रीव को राजा बना दिया। सुग्रीव ने सीता को ढूँढ़ने के लिये वानरों को चारों ओर भेजा है। मैं सुग्रीव का मन्त्री सीता को ढूँढ़ने यहाँ आया और उस देवी को यहाँ पाया। रावण! मेरा हितकारी वचन आप सुनें: दूसरे की स्त्री को रोक रखने का धर्म विरुद्ध अनर्थकारी कर्म आपके लिये उचित नहीं। (५१·१७) सीता उस विषमिश्रित अन्न के समान हैं जिसे न कोई राक्षस न कोई देवता ही पचा सके। (२४) *तप के प्रभाव से जो धर्म संग्रह आपने किया उसका फल आप प्राप्त कर रहे हैं।* (२९) *पर स्त्री हरण के दुष्कर्म का फल भी अब आप शीघ्र ही पायेंगे।"* (३०)

महात्मा हनुमान की बातें सुनकर रावण क्रोध से भर गया और उसने हनुमान को मार डालने की आज्ञा दी। तब विचार-शील विभीषण ने रावण से कहा, "हे राक्षसेन्द्र! आप धर्मज्ञ नीतिज्ञ हैं। वानर दूत को मारने का राजनियम-विरुद्ध और लोकाचार-निषिद्ध कर्म न करें। सोच विचार कर दण्ड दें।"

विभीषण ने दण्डवत् किया। उसके दीन वचन सुन कर रामचन्द्र ने उसको उठा कर हृदय से लगा लिया और कहा, "शरणागत पर दया करना मेरा स्वभाव ही है। जो विषय और सम्बन्ध को भुला कर प्रभु के ध्यान में निमग्न रहते हैं, समदर्शी हैं, हर्ष-शोक नहीं रखते, ऐसे जन मेरे हृदय में बसते हैं। ईश्वर और ब्राह्मणों से प्रेम, नीति और परोपकार, सब गुण तुझमें हैं, इसी से हे लंकेश! तू मुझको प्यारा है।" फिर समुद्र जल मँगा कर यह कहते हुये कि 'मेरा दर्शन निष्फल नहीं जाता', रामचन्द्र जी ने विभीषण का राज तिलक कर दिया। रामचन्द्र जी का स्वभाव वानर समूह के मन भाया!

राम ने विभीषण से पूँछा कि समुद्र कैसे पार करें? लंकेश विभीषण ने कहा, "यद्यपि आपका बाण समुद्र सुखा सकता है तथापि नीति कहती है कि समुद्र के पास जाकर उससे विनती की जाय।" राम ने कहा कि 'हाँ! दैव सहाय हो जाय तो अच्छा है!" लक्ष्मण को यह मत नहीं रुचा; उन्होंने कहा, "नाथ! दैव, दैव तो कायर और आलसी जन पुकारा करते हैं; वीर अपने पुरुषार्थ का आश्रय रखते हैं। आप अपने तीक्ष्ण बाणों द्वारा समुद्र को सुखा दें!" राम ने हँस कर उनसे कहा, "धैर्य धरो, ऐसा ही करेंगे, और समुद्र के पास जाकर बैठ गये।

विभीषण के राम के पास चले आने पर रावण ने भेद लेने के लिये दूत भेजे परन्तु यहाँ वह पहचान लिये गये; उन पर मार पड़ने लगी। सुग्रीव ने उनको अंग भंग करने का प्रस्ताव किया। जब उन्होंने नाक कान काटे जाने की बात सुनी तो वह राम की दोहाई देने लगे। लक्ष्मण को दया आ गई, उन्होंने उनको बन्धन से मुक्त करा दिया और एक पत्र देकर कहा कि "यह चिट्ठी रावण को देना और कहना कि सीता को शीघ्र लौटा दे, नहीं तो समझ ले कि उसका काल आ गया है।" दूत जब

(५२·७,९) रावण ने कहा कि "अपराधी को मारने में दोष नहीं।" (११) विभीषण ने कहा, "अपराधी वह है जिसने इसको भेजा है, वह दण्ड का भागी है।" (२०) रावण ने विभीषण की बात सुन कर उत्तर दिया कि "हाँ! ठीक है, दूत को मारना निन्दित कर्म है। (५३·१,२)

[५]

हनुमान सोचने लगे कि मैंने अशोक वाटिका उजाड़ डाली, राक्षसों को मार डाला; अब लंका का किला विध्वंस करना शेष रहा (५४·३) फिर हनुमान बागों और भुवनों में घूमने लगे। (४) विभीषण का घर छोड़ कर, प्रहस्त, वज्रदंष्ट्र, शुक, सारण, इन्द्रजीत, जम्बुमाली और सुमाली के घर, एक एक करके सब घर जला डाले। (१६) फिर पराक्रमी हनुमान रावण के घर भी पहुँचे। (१८) वायु वेग से चलने लगी जिससे अग्नि प्रचण्ड हो गई और सब घर जल कर राख हो गये। (२३) लंका के जल जाने पर हनुमान को दुःख हुआ कि "मैंने सारी लंका जलाकर बुरा काम कर डाला है। (५५·३) *धन्य है जो अपने मन में उत्पन्न क्रोध को अपने बुद्धि बल से वैसे ही शान्त कर लेते हैं जैसे प्रदीप्त अग्नि को जल से शान्त कर लेते हैं।* (४) जब सम्पूर्ण लंका जल गई तो सीता भी जल गई होंगी। अनजान से मैंने स्वामी का काम नष्ट कर डाला (७) अब मैं राम, लक्ष्मण, सुग्रीव को क्या मुँह दिखाऊँगा।" (१५) हनुमान सीता के विषय में सोच रहे थे कि उन्होंने महात्मा चारणों को कहते सुना (३०) कि हनुमान ने सारी लंका जला डाली परन्तु आश्चर्य है कि सीता नहीं जलीं।" (३३) यह सुनकर हनुमान को अपार हर्ष हुआ। (३४)

फिर हनुमान वीर राक्षसों को मार अपना अपार बल दिखा, सीता को प्रणाम करके समुद्र पार करने के लिये वेग

लौटे तब रावण ने पूँछा कि "विभीषण और राम की सेना जो कालवश है उसका हाल कहो। और वह, जिनके हृदय में मेरा डर है, जिनके जीवन का रक्षक विचारा समुद्र है, उनका भी हाल बता।" दूत शुक बोला, "हे नाथ! आपके भाई विभीषण के जाते ही राम ने उसका राजतिलक कर दिया। राम की सेना के जिस बन्दर ने लंका जलाई थी और आपके पुत्र का अन्त कर डाला था उसका बल तो थोड़ा है; वहाँ एक से एक बढ़ चढ़ कर शूर-वीर योद्धा हैं, हनुमान द्विविद मयंद नल नील अंगद दधिमुख केहरि कुमुद गव जाम्वन्त आदि। वह पर्वत शिलाओं से समुद्र पाट सकते हैं; राम के वाण समुद्र को सुखा सकते हैं; परन्तु विभीषण के कहने से वह अभी समुद्र से मार्ग माँग रहे हैं।" यह सुन कर रावण हँसा और बोला, "अरे मूर्ख, तू व्यर्थ बड़ाई करता है! शत्रु के बल, बुद्धि की थाह तो मैंने पा ली। डरपोक विभीषण मन्त्रित्व करे जिसका उसकी विजय समृद्धि कहाँ तक हो सकती है!" तब शुक दूत ने हाथ बढ़ा कर लक्ष्मण की चिट्ठी रावण के हाथ में दे दी जिसको बायें हाथ (निरादर) से लेकर रावण बँचवाने लगा। उसमें लिखा था, "विभीषण की तरह तू भी राम के चरण कमल का भँवरा बन, नहीं तो राम के वाण रूपी अग्नि में कुल सहित पतङ्ग बन जायगा।" यह सुन कर निर्भयता दर्शाने को रावण हँसा और बोला, "तपस्वियों का यह वागविलास (बातें बनाना) तो देखो!" दूत शुक ने कहा, "हे नाथ! आप रघुनाथ जी को उनकी स्त्री जानकी लौटा दें। राम कोमल स्वभाव हैं, आपको क्षमा प्रदान करेंगे।" इस पर रावण ने शुक को लातों से मारा। वह रामचन्द्र जी के पास पहुँचा। शुक ज्ञानवान मुनि था जो राक्षस वृत्ति को प्राप्त हो गया था। वह राम-कृपा से पुनः मुनि की गति को प्राप्त हो कर अपने आश्रम को चला गया।

से चल पड़े। (५६·२४) सब वानर हनुमान को आता देख प्रसन्न हो हाथ जोड़ कर खड़े हो गये। (२९) उन्होंने हनुमान को मूल फल फूल भेंट अर्पित किया। हनुमान ने पहले संक्षेप में कहा, "मैं सीता को देख आया हूँ।" (५७·३४,३५) फिर लंका का सब समाचार सुनाकर हनुमान ने कहा कि "अब हम सब चलकर रावणादि राक्षसों का हनन कर सीता को ले आयें और तब राम, लक्ष्मण के पास चलें। (५९·६) आगे जो आप उचित समझें उपाय करें।" (३७) वानर श्रेष्ठ जाम्वान प्रसन्न हो बोले कि सीता को ढूँढ़ने की ही आज्ञा हुई थी, उन्हें लाने की नहीं हुई थी। (६०·१६) राजा रामचन्द्र ने राक्षसों को स्वयं मारकर सीता को लाने की प्रतिज्ञा की है। अतः सीता को देख आने का समाचार उनके पास ले जाना हमारे लिये पर्याप्त होगा। (६०·२०)

हनुमान को आगे करके सब वानर राम लक्ष्मण सुग्रीव के पास पहुँचे (६१·२) और प्रणाम करके बैठ गये। हनुमान ने बताया कि "मैं सीता को देख आया हूँ। वह धर्म पालन करती हुई जीवित हैं।" हनुमान के मुख से अमृत तुल्य वचन सुनकर राम और लक्ष्मण प्रसन्न हो गये। (६४·४३) सीता की दी हुई देदीप्यमान सुवर्ण की चूड़ामणि रामचन्द्र को देकर (६५·८) हनुमान ने जैसे सीता को देखा था वह और लंका का सब वृत्तान्त भी कह सुनाया और कहा, "आप शीघ्र समुद्र पार जाने का उपाय करें।" (२८) रामचन्द्र जी ने वह मणि लेकर छाती से लगा लिया और रुदन करते हुये बोले कि "मुझे भी वहाँ ले चलो जहाँ सीता हैं। अब मैं एक क्षण भी यहाँ रहना नहीं चाहता। (६६·११) हे हनुमान! सीता ने जो कुछ कहा है मुझे ठीक ठीक फिर कह सुनाओ।" (१४) हनुमान ने सीता की कही बातों को फिर से कह सुनाया। (६७·१)

———

[५]

समुद्र तट पर रामचन्द्र को तीन दिन बीत गये। राम सकोप बोले, "भाई लक्ष्मण! धनुष वाण तो लाओ। मैं तीक्ष्ण वाणों से समुद्र को सुखा दूँ : दुष्ट से विनय, कुटिल से प्रीति, कृपण से नीति, ममतारत से ज्ञान-कथा, लोभी से वैराग्य-महिमा-वर्णन, क्रोधी से जितेन्द्रियता-वार्त्ता और कामी से हरि-कथा-चरचा, यह सब वैसे ही व्यर्थ होते हैं जैसे ऊषर भूमि में बोया हुआ बीज व्यर्थ जाता है", यह कह कर राम ने कराल वाण मारा जिससे समुद्र में ज्वाला उठी और समुद्र के जीव जन्तु अकुला गये; समुद्र ब्राह्मण का रूप धरकर राम की सेवा में उपस्थित हुआ; नीच नम्रता से नहीं समझता, वह डाटने पर ही मानता है। समुद्र बोला कि "आपने मुझे सीख दी सो अच्छा किया;

ढोल गवाँर सूद्र पसु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी॥

(ढोल गवाँर शूद्र पशु और नारी यह सब ताड़ना के अधिकारी हैं।)"

रामचन्द्र ने कहा कि जिस तरह सेना पार हो जाय वह उपाय करो। समुद्र ने कहा, "हे नाथ! नल नील को आशीर्वाद प्राप्त है : उनके छुये हुये भारी पहाड़ भी समुद्र में तैर सकते हैं; मैं भी सहायता करूँगा।" आप पुल बँधवा दें, आपका सुयश त्रिलोकी में गाया जायगा!" समुद्र तो अपने स्थान को चला गया; रघुनाथ जी को यह सेतु बाँधना प्रिय लगा।

यह कलियुग के पापों को हरने वाला चरित्र तुलसीदास ने अपनी बुद्धि के अनुसार गाया। रघुनाथ जी के गुण गण सुख के स्थान और दुःख को मिटाने वाले हैं। अरे दुष्ट मन! तू सब आशा भरोसा छोड़कर नित्य इन्हीं गुण गणों को गा और सुन!

रघुनायक श्री रामचन्द्र जी के गुणों का गाना सम्पूर्ण शुभमंगलों का देने वाला है। जो इन गुण गणों को आदर के साथ सुनेंगे वह बिना नाव के ही संसार समुद्र को तर जायेंगे।

गायत्री मन्त्र

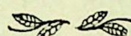
ओं भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्व्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ (यजु० अ० ३६, मंत्र ३)

ओ३म्——जगत रचयिता का सर्वोत्तम नाम
भूः———प्राणों के भी प्राण
भुवः———दुःखनाशक
स्वः———सुखस्वरूप सर्वसुखदाता
सवितः——जगतोत्पादक प्रकाशक ऐश्वर्यदाता
वरेण्यम्——सर्वश्रेष्ठ, ग्रहण व ध्यान करने योग्य
भर्गः———क्लेशनाशक, शुद्ध ज्ञानस्वरूप
देवस्य——कामना करने योग्य परमात्मा जो है
तत्———उसको
धीमहि——हम ध्यान में लायें
यः———वह परमात्मा
नः———हमारी
धियः———बुद्धियों को उत्तम गुण कर्म स्वभावों में
प्रचोदयात्—प्रवृत्त करें, स्थिर करें !

[हे परम पिता परमात्मन् ! हम आपके सुन्दर तेजोमय सच्चिदानन्द शुद्ध ज्ञानस्वरूप का ध्यान करते हैं। आप सारे जगत के उत्पादक, प्राणदाता प्रकाशक आनन्ददाता ज्ञानदाता हैं। आप सब का पालन पोषण रक्षण करने वाले हैं, सब को निर्भय करने वाले, सत्य में सुदृढ़ रखने वाले हैं। आप सर्वक्लेश-नाशक मङ्गलकारक पतितपावन अधमोद्धारक हैं। हे प्रभो ! आप ही वरण किये जाने योग्य हैं; आप हमारी बुद्धियों को उत्तम गुण कर्म स्वभावों में प्रवृत्त करें, स्थिर करें !]

ओङ्कार उपासना

[भक्तराज गोसाईं तुलसीदास कृत रामायण से]



निराकारमोङ्कारमूलं तुरीयम्
विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपम्

ब्रह्म अनादि अखंड अनन्ता । अनुभवगम्य भजहिं जेहि सन्ता ॥
एक अनीह अरूप अनामा । अज सच्चिदानन्द पर-धामा ॥
'नेति नेति' जेहि वेद निरूपा । चिदानन्द निरुपाधि अनूपा ॥
आदि अंत कोउ जासु न पावा । मति अनुमानि निगम अस गावा
देश काल दिसि विदिसहु माहीं । कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं ॥
बिनु पद चलइ सुनइ बिनुकाना । कर बिनु करम करइ विधि नाना॥
आनन रहित सकल रस-भोगी । बिनु वाणी वक्ता बड़ जोगी ॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा । ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा ॥
असि सब भाँति अलौकिक करनी । महिमा जासु जाइ नहिं बरनी
जगु पेखन तुम देखनि हारे । बिधि हरि संभु नचावनि हारे ॥
जे निज भगत नाथ तव अहहीं । जो सुख पावहिं जो गति लहहीं

सोइ सुख सोइ गति सोइ भगति, सोइ निज चरण सनेहु ।
सोइ विवेक सोइ रहनि प्रभो ! हमहि कृपा करि देहु ॥

वंदना

तव वंदन हे नाथ ! करें हम !!
तव करुणा की छाया पाकर, शीतल सुख उपभोग करें हम ॥
लोक में सत्य को ईश्वर जानें, सच बोलें सत्कर्म करें हम ॥
कर्म प्रधान रखा है विधि ने, पुण्य करें अघफल से डरें हम ॥
ईर्ष्या-द्वेष, प्रपंच हटा कर, हिय में अपने प्रेम भरें हम ॥
देखि दुखी को जी भर आये, पर-पीरक बन दुःख हरें हम ॥
जन-सेवा प्रभु-सेवा समझें, जी से सब कर्त्तव्य करें हम ॥
भारत जननी की सेवा का, व्रत मन में हे नाथ ! धरें हम ॥
माता का दुख हरने के हित, न्यौछावर सर्वस्व करें हम ॥
पूज्यवरों का आशिष पायें, आदर उनका सदा करें हम ॥
करें आत्मा उन्नत अपनी, वेदाज्ञा यह सीस धरें हम ॥
सुयश नाथ का गाते-गाते, भवसागर को पार करें हम ॥

[२]

(चं० प्र०)

मेरी इक कामना अन्तिम यही है।
जो भगवन् ! मुझको व्याकुल कर रही है ॥
है वत्सलता तुम्हारी धन्य भगवन् !
जो करते हो अधम जन का भी पालन ॥
हो तुम सत्यस्वरूपानन्द, आओ !
सुखद मम हीय की कुटिया बनाओ ॥
हिये में सत्य का आलोक भर दो।
मुझे सद्ज्ञान दो सत्पथ पे कर दो ॥
हो मन-वच-कर्म शुद्ध और सत्य मेरा।
रहे ध्यान इस पे हर क्षण नित्य मेरा ॥
दयासागर हे दीनानाथ ! आओ।
सफल मेरे मनोरथ कर दिखाओ ॥

प्रार्थना

१—ॐ ईशावास्यम् इदं सर्वं
यत् किंच जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः
मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥
ओ३म् ईश का आवास यह सारा जगत्,
जीवन यहाँ जो कुछ उसी से व्याप्त है।
अतएव करके त्याग उस के नाम से
तू भोग कर उसका, तुझे जो प्राप्त है।
धन की किसी के भी न रख तू वासना।

१५—हिरण्यमयेन पात्रेण
सत्यस्य अपिहितं मुखम्।
तत् त्वं पूषन्
अपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ॥
मुख आवरित् है सत्य का उस पात्र से
जो हेममय है, विश्व-पोषक हे प्रभो !
मुझ सत्यधर्मा के लिये वह आवरण
तू दूर कर, जिस से कि दर्शन कर सकूँ ॥

१७—वायुर् अनिलम् अमृतम्
अथ इदम् भस्मान्तं शरीरम्।
ॐ क्रतो स्मरकृतं स्मर
क्रतो स्मर कृतं स्मर ॥
यह प्राण उस चेतन अमृतमय तत्व में
हो जाय लीन, शरीर भस्मीभूत हो !
ले नाम ईश्वर का अरे संकल्पमय
तू स्मरण कर, उसका किया तू स्मरण कर,
संन्यस्त करके सर्वथा संकल्प निज
हे जीव मेरे ! ॐ का स्मरण कर !!

आरती

ओ३म् जय जगदीश हरे, पिता जय जगदीश हरे।
भक्त जनन के संकट, क्षण में दूर करे॥
जो ध्यावै फल पावै, दुख विनशै मन का—
पिता, दुख विनशै मन का।

सुख सम्पति घर आवे,
सुख सम्पति घर आवै, कष्ट मिटै तन का।
ओं, जय जगदीश्वर हरे!

मातु पिता तुम मेरे, शरण गहूँ किसकी, प्रभु शरण····
तुम बिनु और न दूजा, तुम····आस करूँ जिसकी; ॐ जय····
तुम पूरण परमात्मा, तुम अन्तर्यामी, प्रभु तुम····
पर ब्रह्म परमेश्वर, पर····तुम सब के स्वामी; ॐ जय····
तुम करुणा के सागर, तुम पालन कर्त्ता, प्रभु तुम····
मैं सेवक तुम स्वामी, मैं····कृपा करो भर्त्ता; ॐ जय····
तुम हो एक अगोचर, सब के प्राणपती, प्रभु सब····
किस विधि मिलूँ दयामय, किस····तुमको मैं कुमती; ॐ जय····
दीनबन्धु दुख हर्त्ता, तुम रक्षक मेरे, प्रभु तुम····
करुणा हस्त बढ़ाओ, करुणा····शरण पड़ा तेरे; ॐ जय····
विषय विकार मिटाओ, पाप हरो देवा, प्रभु पाप····
श्रद्धा भक्ति बढ़ाओ, श्रद्धा····सन्तन की सेवा; ॐ जय····

मुद्रक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।

गीत

(जगदीश गुणानुवाद)

जित् देखो तित् ॐ ओंकार, जित् देखो तित् ॐ ओंकार

सर्व व्यापक सिरजनहार, जित्.......

सब जीवों का प्राणाधार, जित्.......

पालन पोषन रचनहार, जित्.......

मात-पिता बन्धू भर्त्तार, जित्.......

सत्यम् ईश्वर लोकाधार, जित्.......

सत्य सहायक जयकर्त्तार, जित्.......

बुद्धिराशि शक्ती भण्डार, जित्.......

बुद्धी ज्ञान औ बलदातार, जित्.......

सर्व द्रष्टा सब जाननहार, जित्.......

सुख-दुख-दाता कर्मअनुसार, जित्.......

भाग्य-विधाता-विधि-कर्त्तार, जित्.......

दीनदयाल औ शीलागार, जित्.......

आर्त्त जनन की सुनत पुकार, जित्.......

सेवक-संकट-मोचनहार, जित्.......

पतित-उधारन अधमोद्धार, जित्.......

करुणासागर परमउदार, जित्.......

प्रभु को शत् शत् नमस्कार, जित्.......

नमस्कार है बारम्बार, जित्.......



कौन हो आये हो क्यों यह जान लो,
अपने सिरजनहार को पहचान लो।
ताकि मानुष जन्म स्वारथ हो सके—
सत्कथन, सत्कर्म करना मान लो॥